ज्ञानवल्लभ ग्रन्थमाला पुष्पाङ्क ७ वा

सुभाषित रत्न संग्रह

मूलकर्ता—

पू. कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराजादि

अनुवादिका—

प्रवर्तिनी जी श्रीवल्लभश्रीजी म. साहिबा की शिष्या

कुसुमश्रीजी

पूज्येश्वरी श्री ज्ञानश्रीजी महाराज साहिबा का

जीवन चरित्र

चरित्र लेखक—

कुंवर मांगीमलजी मुणोत

बी. ए. एल एल. बी., एडवोकेट, जोधपुर

प्रकाशक—

श्री भींवराजजी कानमलजी मुथा पारख

नादगाव निवासी के सुपुत्र

श्री खेतमलजी

❀ उपदेशदात्री ❀

पूज्यपाद खरतर गणाधीश्वर, त्यागमूर्ति, प्रत्यक्ष प्रभावी
श्रीमान सुखसागरजी महाराज साहब के पट्टपरंपराधीश
वर्तमान आचार्य देव परमपूज्य विद्वद्वर्य श्रीमान्
आनन्दसागर सूरीश्वरजी म० सा०
की आज्ञानुयायिनी शान्तमूर्ति श्रीमति
ज्ञानश्रीजी म० सा०
आजन्म ब्रह्मचारिणी विदुषी प्र० वल्लभश्रीजी म० सा० की शिष्या
गुरुभक्तिपरायणा श्री सुमतिश्रीजी
— तथा —
श्री जिनश्रीजी म० सा०

पुस्तक प्राप्ति स्थानः—
(१) ज्ञान वल्लभ ग्रन्थ भंडार
लोहावट (मारवाड़)
(२) चदनमल नागोरी, जैन पुस्तकालय
छोटी सादड़ी (मेवाड़)
(३) श्री जिनदत्त सूरि सेवा संघ
३८ मारवाडी बाजार
बम्बई—२

प्रथम संस्करण
प्रतियां १०००

वीर संवत् २४८३
विक्रम सं० २०१३
ईस्वी सन् १९५७

निवेदन

श्रीमती पूज्यमहोदया सद्गुणसम्पन्ना

श्री कुसुमश्रीजी साहिबा

आपकी व्याख्यान कला आकर्षक होने से श्रोता प्रसन्न हो जाते हैं। आपने इस पुस्तक में अनुपम कुसुम का संग्रह किया है। यह अभ्यासी को और व्याख्यान दाता के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। आपने इसी प्रकार दोहा संग्रह भी किया है, यदि उनका प्रकाशन होगा तो उपयोगी समझा जायगा, आप इस ओर अधिक ध्यान दीजिये और अध्ययन की वृद्धि के साथ ज्ञान वल्लभ कुसुम परिमल को भी फैलाइये यही अभ्यर्थना।

हाल मुकाम
जयपुर

श्रमणोपासक सेवक—
चन्दनमल नागोरी
छोटी सादड़ी (मेवाड़)

★ समर्पण ★

चारित्र-भूषण-भूषिता जैनशासनोन्नतिकरा श्रीमान
ब्रह्मचारिणी, परमपूज्या, श्रीमति प्रवर्तिनीजी

श्री वल्लभश्री जी महाराज

आप श्री ने मुझ जैसी अधमा अज्ञानात्मा को चारित्र रत्न देकर मोक्षपथ की पथिका बनाई है, इस उपकार से मैं जीवन पर्यंत उपकृता रहूँगी।

आपश्री की वीरता, धीरता, सहिष्णुता, वात्सल्यता आदि मौलिक गुणों से आकर्षित होकर यह "श्री सुभाषित रत्न संग्रह" नामक लघु ग्रन्थ आपके करकमलों में भेट करती हूँ। कृपया स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।

शुभम्

आपकी शिष्या—
कुसुमश्री

आबाल ब्रह्मचारिणी, विदुषी पूज्या प्रवर्तिनीजी

श्री वल्लभश्रीजी महाराज साहिबा

जन्म वि० सं० १९४१ पौष सुदी ८ (राजस्थान) लोहावट

दीक्षा वि० सं० १९६१ मगसर सुदी ५ लोहावट (राजस्थान)

प्रवर्तिनी पद वि० सं० २०१८ आश्विन शुक्ला १५

छोटी सादडी (मेवाड)

॥ ॐ ॥

आबाल ब्रह्मचारिणी विदुषी प्रवर्तिनीजी श्री वल्लभ श्रीजी म० सा०

— की —

स्तुति

"संस्कृत अष्टक"

शार्दूल विक्रीडित वृत्तम्

सामान्ये प्रवर गुणोत्तम कुले, सुग्राम लोहावट,
श्रेष्ठो सूर्यमल पिता च सुखानो, मातास्ति गोगा सती ।
तत्कुक्षा ननन सुता च समभूद् गुर्वी मदीया सतु,
पायाद्धन्यतमा सुशीलहृदया, सा वल्लभश्री मुदा ॥१॥
सौम्याङ्के सुखदायिनी खरतर, गच्छे च विख्यातदा,
सा शान्त्या गुणोत्तमा लघुवया, प्रसन्नता पुण्यभाक् ।
सामीप्ये च शिवश्रिया गुरुभृतश्चारित्रपद्मोत्तम
तत्सेवा त्रिविधेन सादरभरा भूयाच्छ्रियै मे सदा ॥२॥
गम्भीरा जिनशास्त्रबोध सहिता, मिथ्यात्व निर्मूलिकाम्,
नित्यानित्य पदार्थ भावविहिता यस्या वरा देशनाम् ।
श्रुत्वा जीवनपद्मबोधनवरा, दीक्षा गृहीता शुभा,
त्वां वन्दे सुभगं मनोहरतमं विज्ञानदं भास्वत ॥३॥
दुःखस्थानवता नृणां भवभयाब्धौ, सा वरा नौ समा,
मोक्षार्थं च समर्पितु बहुजनेभ्य कल्पवृक्षोपमा ।

सम्प्राप्ता व्रत घोर कष्टसहनैं, धीरा च मेरो समा,

गम्भीरा नृकृते हि सागरसमा, मानापमाने सदा ॥४॥

सद्भक्त्या सततं परान् गुणरत पञ्चेश्वरान् ध्यायति,

मूर्च्छा मत्सर वर्जिता प्रभुगुणान् या गायति प्रत्यहम् ।

कल्याण स्वपरान् सुमार्गयति सा, स्वाचार मग्नामति,

पूज्या पुण्यभरा प्रिय श्रितु मे, पूज्येश्वरी मोक्षदा ॥५॥

सुव्योमेन्दु नभोयुगाश्विनवल, चे पूर्णिमाया दिने,

सिंहश्री समुदाय रक्षण निधौ, आनन्द सूर्याज्ञया ।

श्री सघेन सुसादडी लघु पुरे प्रस्थापिता सादरम्,

सन्मान्या च महत्तरा वरपदे, सा वल्लभश्री शुभा ॥६॥

धर्मे ध्यानरता महोदयवरा, सद्भाव निष्ठा सदा,

पापाना बलनाशने भगवती, वीर्यादि युक्ता शुभा ।

सद्बुद्ध्या खलु तद्गुणान् कथयितु विद्वज्जनो न प्रभु,

बालत्वेन तथापि तद्गुणकथा, कर्तुं न शक्तिश्च मे ॥७॥

जीर्णोद्धार जिनालयादि विधयो, सद्भावत कारिता,

यस्या सद्गुणवर्णना कविवरा कर्तुं समर्था नहि ।

प्राप्ताया कुसुमप्रियाश्चरणयो तस्याश्च भूयान्छिनम्,

कल्याण विदधातु सर्वजगता सा वल्लभश्री मुदा ॥८॥

ॐ

❋ आमुख ❋

सज्जन गण!

इस विषम संसार संपाटी पर दो प्रकार से ही विशद उपकार हो सकता है-प्रवचन द्वारा और ग्रन्थ निर्माण द्वारा ये दोनों ही सुभाषितों से यानी सूक्तियों से, अर्थात् सुन्दर कहावतों से सुशोभित और पल्लवित होते हैं, इतना ही नहीं असर कारक तलस्पर्शी बन जाते हैं, अतएव सुभाषितों का आश्रय हो सकता है। उसकी पूर्ति कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य म० आदि आचार्य महाराजों ने कर के महदुपकार किया है, परन्तु वह देवभाषा (संस्कृत) में होने से वर्तमान समय में सर्व साधारण उसका लाभ नहीं ले सकते। इस ही से-मेरी बालभावना ने हिन्दी अनुवाद करने की प्रेरणा की, इसमें परमोपास्य प्रवचनकर्ता पूज्येश्वर, आचार्य गुरुदेव वीरपुत्र श्री सज्जिन आनन्दसागर सूरीश्वरजी म० सा० ने ग्रन्थ निर्माण का तरीका बताया, इसमें शुद्धि वृद्धि कर मुझे प्रोत्साहन दिया, यह उपकार जीवनपर्यन्त मेरे हृदय पटपर अमिट अङ्कित रहेगा।

वस्तुत इस "सुभाषित रत्न संग्रह" लघु ग्रन्थ में सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक शिष्ट वाक्यों का संकलन है-व्याख्यान में, भाषण में, बातचीत में और ग्रन्थ रचना में यह बडा उपयोगी है, कण्ठस्थ करने योग्य है।

जिज्ञासुजन इस मेरे प्रथम प्रयास को अपना कर मुझे उत्साहित करें, यह मेरा नम्र निवेदन है।

मु० बम्बई
२०१३ महा सुदी ५

शुभम्

शासन सेविका-
कुसुमश्री

धन्यवाद

••:••

– इस पुस्तक के प्रकाशन में –

श्रीमान् खेतमलजी मुथा

मालिक दुकान

श्री भींवराज जी कानमल जी

नादगाव निवासी

– ने –

द्रव्य व्यय किया है।

आप धार्मिकवृत्ति के सज्जन हैं द्रव्य का सदुपयोग करने बाबत धन्यवाद है।

भवदीय—

चंदनमल नागोरी

छोटी सादडी (मेवाड)

पूर्वाचार्यों की स्तुतिरूप अष्टक

—रचयिता—श्रीमानजी लमजी शाह

जिनेश्वर सूरि

सब से पहिले चैत्यवास को जिस सूरिने हटा दिया,
उच्च उपाधि खरतर नायक जिस सूरि ने प्राप्त किया।
शासन के रक्षक सूरिवर ने जनता का कल्याण किया,
जिन गुन ईश्वर सूरिवर को सब जनता ने नमन किया।

(१)

अभयदेव सूरि

जिनधर्म सुनाकर अपनी जिसने प्रभाव शीलता दिखलायी,
नव अंग विषय की वृत्ति बनाकर शासन गुरुता बतलायी।
खरतर मत के रक्षक होकर आप बने थे उपकारी,
श्री अभय देव सूरि को अंजलि देते हैं हम भाव भरी।

(२)

मचन्द्र सूरि

जिस सूरिने विविध विषय के ग्रन्थ बनाये भारत में,
चमत्कार दिखलाकर जिसने मुग्ध बनायी आलम में।
श्री कुमारपाल को भक्त बनाकर दया धर्म फैलाया था,
हो वन्दन यह हेमसूरि को जिसने युग पलटाया था।

(३)

जिनदत्त सूरि

जिस सूरि ने लक्षावधि जैनी धाव श्रीधरर बनाये,
जनता को फिर जिस सूरिने चमत्कार भी बतलाये।
जिन शासन का गौरव जिस सूरिने बार २ भा बतलाया,
श्रीजिनदत्तसूरिने संयम साधन परिचय करवाया।

(४)

जिनकुशल सूरि

जब पार्श्वप्रभु का स्नपनमहोत्सव मेरुशिखरपर किया गया,
तब देवों ने धाम धूम से भक्ति भावको प्रकट किया।
स्वप्नो में द्रँ द्रँ धपमप के वर्णन से विस्मित किया,
खरतर की ख्याति में सब जग अपना दीपक तेज किया।

(५)

जिनचन्द्र सूरि

अमास की पुनम दिखलाकर जनता को दिङ्मूढ की थी,
अकबर नृप को जिस सूरिने धर्म देशना दीनी थी।
चन्द्र समी शीतलता जिसने जगह २ पर दिखलायी,
श्रीजिनचन्द्रसूरि ने शासनसेवा हरदम अपनायी।

(६)

समय सुन्दर कवि

काव्यशास्त्र को पढकर जिसने जिनवर स्तोत्र बनाये थे,
"राजानो ददते सौख्यं" का विधविध अर्थ बताये थे।

स्तवनों की रचना कर करके सब को चकित बनाये थे,
समय कविवर वन्त सुन्दर उत्तर पद कहलाये थे।
(७)

देवचन्द्रजी
रसमय स्तवनो रचकर जिसने जनता को विस्मित की थी,
योगीवर की योग साधना पद पद शिक्षी करती थी,।
अद्भुत शक्ति दिखायी जिसने आत्मासी निज ध्यानबले,
देवचन्द्र की जय जय बोलो जग में जिनकी ज्योत जले।
(८)

जैनाचार्य श्री

वीरपुत्र श्रीमज्जिन आनन्दसागर सूरीश्वरजी म०

स्तुतिरूप पञ्चक

गुणनिधि उपकारी सूरि आनन्दधारी,
शरण हम विहारी अर्ज प्रान' हमारी।
भवजलधि उतारी, दु ख दारिद्र वारी,
कर शिर अधिकारी वन्दना हो हजारी ॥ १ ॥
वर यम अधिकारी, आदरे मोक्षकारी,
नय सत निरधारी शास्त्र वेत्ता अपारी।
प्रभु वचन उचारी, भव्य आनन्दकारी,
अमृतसम उदारी देशना चित्तहारी ॥ २ ॥
विचरत जयकारी भावना शुद्धधारी,
स्तुति विधि अनुसारी, विश्व कल्याणकारी।
सविनय नरनारी, भाव मिथ्या विसारी,
समकित गुणकारी उच्चरे हर्ष भारी ॥ ३ ॥
सुनियम अनवारी, अव्रतों पाच टारी,
कुविषय परिहारी, मोह माया विदारी।
गुरुगुण बलिहारी, सद्गुरु ब्रह्मचारी,
जन समुदाय सारी कीर्ति गावे उदारी ॥ ४ ॥

जन्म मरण जारी, क्रोध माया निवारी,
उपशम रस धारी आत्म उद्योत कारी।
चरणपथ निहारी, ज्ञानदाता विचारी,
'कुसुम' अभयकारी हो कृपा आप सारी ॥ ५ ॥

॥ कलश ॥

प्रणेता विख्याता सुखरवर गच्छोभवि करा।
विरक्ता विज्ञाता प्रशम सुखरत्नाकर वरा ॥
पदारोहानन्दा गुणनिधि विबोधे बहु नरा।
नमो लक्ष्मीदाता सुगुरु शिव श्री वल्लभकरा ॥

* पूज्येश्वरी ज्ञानदानेश्वरी *

श्रीमती ज्ञानश्रीजी म० सा० स्तुतिरूप पञ्चक

—लेखक मानचो

जिसने निज जीवन शांत सुधारस से, परिपूर्ण बनाया था।
जिसने जीवन मे अनुभव का, अमृत को भी अपनाया था॥
जिसने सद्भाव परस्पर म अनुमोदन योग्य बनाया था।
विनयादि गुण से ज्ञान श्री ने विरति के फल को पाया था॥१॥

है धन्य पिता श्री रतनचन्द जिसका गृह पावनकारी किया।
फिर धन्य धन्य कस्तुरी है जननी ने तुमको जन्म दिया॥
संसारी "नाम जडाव" दिया तो जीवन रत्न जडाया था।
विनयादि गुण से ज्ञान श्री ने विरति के फल को पाया था॥२॥

अपने में ज्ञान विषय की ज्योत जलत सदा ही दीपलायी थी।
निज जीवन में आत्मचिंतन बिन और न बात बतलायी थी॥
परिणा में आत्म विकास बनाकर जीवन सफल बनाया था।
विनयादि गुण से ज्ञान श्री ने विरति के फल को पाया था॥३॥

रात्रि में सोते लोग सभी तब जागृत आप सदा रहते।
सोऽहं सोऽहं ध्यान लगाकर तन्मय हो सकट को सहते॥
अनुपम ज्ञान ध्यानादि गुण को जीवन में बतलाया था।
विनयादि गुण से ज्ञानश्री ने विरति के फल को पाया था॥४॥

स्वनिंदा गुणीजन स्तवना, निशदिन आप किया करते।
पञ्च विषय त्यागकर तप को आजीवन गुरुचर्या धरते॥
हो धन्य जीवन हो धन्य जीवन, सयम को खूब दीपाया था।
विनयादि गुण से ज्ञानश्री ने विरति के फल को पाया था॥५॥

❋ अपूर्व प्रकाशन ❋

पुष्पाङ्क	नाम	कीमत
२९	यंत्र मंत्र कल्प संग्रह—जिस में पचहत्तर प्रकार के यंत्र, नौ मंत्र और विविध प्रकार के छे कल्पों का संग्रह है।	रु० १०)
३०	घंटाकर्ण कल्प—सचित्र यंत्र मंत्र विधि विधान सहित विविध रंगों में छपा है।	रु० ५)
३१	नमस्कार महामंत्र महात्म्य—विषय अध्ययन योग्य है अवश्य मंगाइये।	रु० २)
३५	अन्तराय कर्म की पूजा—सार्थ एवं अन्तर्गत कथा सहित।	आ० ॥=)
३७	गृहस्थ धर्म—अतिउपयोगी पैंतीस विषय पर विवेचन।	भेट

卐

पता —

चंदनमल नागोरी, जैन पुस्तकालय

पोस्ट—छोटी सादड़ी (मेवाड़)

एक रुपये

—: मे :—

सात क्षेत्र का लाभ

श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ के सदस्य बन कर

पुण्य सञ्चय करिये

सदस्य शुल्क १) रुपया सिर्फ

सेवा सघ समाज की सेवा करने मे आप का सहयोग चाहता है एक रुपया वार्षिक देना बडी बात नहीं है। बगैर विलम्ब पत्र लिखिये।

प्रतापमलजी सेठिया

मत्री—
श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ
३८ मारवाडी बाजार
बम्बई २.

पूज्येश्वरी श्री ज्ञानश्रीजी महाराज साहब

– का –

जीवन चरित्र

द्रव्य सहायिका—

तिवरी निवासी श्री चुन्नीलालजी ओस्तवाल के

सुपुत्र श्री जुगराजजी की

धर्मपत्नी जेठीबाई

मूल्य

शिक्षा ग्रहण

लेखक—

कुंवर मांगीलालजी मूणोत

बी ए एल एल बी एडवोकेट

जोधपुर

(४)

रात्रिमे सोते लोग सभी तब जागृत आप सदा रहते,
मोह मोह का ध्यान लगाकर तन्मय हो सकट सहते।
परमार्थ परायणताका गुणको जीवनमे बतलाया था,
जिनयात्रि गुणने ज्ञानश्रीने जिरतिने फलको पाया था॥

(५)

निर्जकी निन्दा परका गुणदर्शन निशदिन आप कियाकरते,
*विगयाका त्याग ममा तपको आजीवन गुरुचर्या करते।
हो धन्य जीवन हो धन्य जीवन सयमको खूब दीपाया था,
जिनयात्रि गुणने ज्ञानश्रीने जिरतिने फलको पाया था॥

*पाच विगया था।

साध्वी जी महाराज श्री ज्ञानश्री जी साहिबा

स्वर्गीय विदुषी साध्वी श्री ज्ञानश्रीजी

– को –

अर्पण पत्रिका

(१)

यस्याश्चरित्रमतितोषकरं जनाना-
माणी विवेककलितापि गुरौ सदैव ।
शान्त्यादि सद्गुणनिधिं परिरक्षति या,
ज्ञानश्रियं प्रतिदिनं प्रणमामि सत्र ॥

(२)

यस्या 'उदार' इति नाम सदैव योग्य,
रत्नानि धारयति सौम्यगुणात्मकानि ।
ज्योति प्रसारयति या परिशीलनेन,
ज्ञानश्रिय प्रतिदिन प्रणमामि सत्र ॥

(३)

शेते सदैव जनता निशि स्वप्नमेवत्,
जागर्ति चिन्तयति ध्यायति तत्त्वमेकम् ।
सोऽहं स्मरन्ती बहुशः सुगुणाभिरामा,
ज्ञानश्रिय प्रतिदिन प्रणमामि सत्र ॥

चरणोपासिका विनीता—
वल्लभश्री

प्रातः स्मरणीया पूज्यपाद–स्वर्गीया

श्रीमती ज्ञानश्रीजी म० सा० का

जीवन चरित्र

—०❀०—

जन्मस्थान

जोधपुर राज्यान्तर्गत लोहावट नामक एक सुन्दर जनपद (कस्बा) है, जो दो वास (जाटावास और विसनावास) में विभक्त है। दोनों वास प्राचीन जिन-मन्दिरों, धर्मशालाओं, पाठशालाओं से सुशोभित हैं। यहां पर खरतर गणाधीश्वर पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्री सुखसागरजी महाराज का प्राचीन जैन भंडार एवं जैनाचार्य श्रीमज्जिन हरिसागरसूरिजी महाराज का पुस्तकालय और हमारी चरित्र नायिका का सुसंग्रहीत "श्री ज्ञानश्री वल्लभ श्री ज्ञान भंडार" भी है। यहां पर दानवीर और महान तपस्वी ५३ दिन अनशनधारी गणाधीश श्री छगनसागरजी महाराज

तथा क्रियापात्र श्री त्रैलोक्य सागरजी महाराज के स्मृतिरूप हैं, जो रमणीय स्थान "चम्पावाड़ी" के नाम से विख्यात हैं।

जन्म

इस लोहावट कस्बे के नागग्राम में पारख गोत्रीय जैन कुटुम्ब में सेठ फतहचन्दजी के पुत्र सेठ मुकनचन्दजी निवास करते थे। श्री मुकनचन्दजी की सुयोग्या धर्मपत्नि श्री कस्तुरबाई की कुक्षी से तीन पुत्र (करणीदानजी, सूरजमलजी, धनराजजी) और चार पुत्रियां हुईं, जिनमें सबसे छोटी हमारी चरित्र नायिका थीं।

उनका जन्म विक्रम संवत् १६७८ के श्रावण शुक्ला ३ को हुआ था। माता पिता ने उनका नाम 'जड़ावकुंवर' रखा मानों उनके जन्म से इस कुटुम्ब रूप आभूषण का 'जड़ाव' हो गया। जब से आपका जन्म हुआ, तब ही से कुटुम्ब की उन्नति होती रही। बाल्यावस्था से ही यह बड़ी भाग्यशालिनी और होनहार प्रतीत होती थीं और उनकी मुखमुद्रा भी बड़ी तेजस्वी थी। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की लोकोक्ति आप पर जन्म से ही चरितार्थ होती रही। माता पिता की भक्ति और उनकी आज्ञा पालन में वे सदा तत्पर रहती। थोड़ी सी उम्र में ही उन्होंने अच्छी धार्मिक और व्यावहारिक योग्यता प्राप्त करली थी।

विवाह

इसी लोहावट कस्बे में चोपड़ा गोत्र में धर्मनिष्ठ दृढ़श्रद्धालु श्री करणीदानजी सूरचन्दजी का एक सुविख्यात खानदान है।

इनकी मशहूर दुकानें बम्बई, धुलिया, मालेगाँव, नन्दुरबार, मालेगाव, शेतिया, दोंडायचा आदि दूर दूर के शहरों में चलती थीं। यह विख्यात खानदान केवल धनाढ्य ही नहीं था, किन्तु इसमें धनका वास्तविक सदुपयोग होता था। हजारों रुपये प्रति वर्ष धर्म स्थानों में लगाते, विपुल सुपात्र दान से चारित्र सेवा करते, स्वधर्मी बन्धुओं की भक्ति सहायता में हर समय तत्पर रहते, और दीन दुखियों को सहायता आदि बांटते थे।

श्री जड़ावकुंवर की आयु जब विवाह योग्य हो गयी तो उनके माता पिता ने उनका पाणिग्रहण इस विख्यात घराने के सेठ खूबचन्दजी के ज्येष्ठ पुत्र सुयोग्य श्री लक्ष्मीचन्दजी के साथ कर दिया। विवाह के बाद आपने अपने पातिव्रत धर्म, शान्त स्वभाव, कार्य कुशलता, कुशाग्र बुद्धि और सेवाभाव से सुसराल के सारे कुटुम्ब को थोड़े ही समय में अपने अनुकूल बना लिया। थोड़ी उम्र होते हुये भी घर के लोग महत्व के कार्यों में आपकी सलाह लेते थे।

विवाह के बाद जब लड़की अपने कुटुम्ब को छोड़ कर नये कुटुम्ब में दाखिल होती है, तो उसको सब परिस्थिति नवीन नजर आती है। ऐसे अवसर पर बड़ी कुशलता से काम करना पड़ता है। जिनके माता पिता ने अपनी बालिकाओं को सुयोग्य शिक्षा दी हो, लाड प्यार में ही जिनको बिगाड न दी हो, जो आवश्यकता से अधिक सुख-समृद्धि की आशा से ही सुसराल में

नाबिल नहीं हुई हो, वे ही हमारी चरित्र नायिका की भांति नवीन परिस्थिति से टक्कर झेल कर अपने सुसराल के नये कुटुम्ब को अपने अनुकूल बना सकती हैं। अन्यथा आज कल की भांति नव विवाहिता कन्यायें सुसराल म पहुँचते ही कुटुम्ब मे वैमनस्य फैला कर सारे कुटुम्ब के जीवन में अशान्ति उत्पन्न कर देती हैं।

गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त होने वाली नव-विवाहिता बहना से मेरा अनुरोध है कि वे यदि श्री जडावबाई का अनुकरण करे, तो उनका गार्हस्थ्य-जीवन अधिक सुखमय हो सकता है। श्रीमती जडावबाई को प्राय १२ वर्ष तक अपने पतिदेव का सौभाग्य प्राप्त हो सका, और इस अरसे में उन्होंने अपने सुसराल के कुटुम्ब को स्वर्ग तुल्य बना रखा था।

वैधव्य

किन्तु दुष्ट काल से यह सौभाग्य सहन न हो सका। उसने इस स्वर्ग वाटिका को विध्वस करने का ही ठान लिया। श्रीमती जडावबाई के पतिदेव श्री लक्ष्मीचन्दजी का प्लेग की बीमारी से बम्बई में अचानक अवसान हो गया। यों तो श्रीलक्ष्मीचन्दजी व सारा कुटुम्बही धर्मपरायण था, किन्तु धार्मिक कार्यों में श्रीलक्ष्मी-चन्दजी का विशेष प्रेम था। उनकी मृत्यु का दु सह समाचार लोहावट में पहुचा तो सब कस्बे को अत्यत ही रज हुआ। यहा तक कि एक सुयोग्य श्रावक के कराल काल के कवल हो जाने से परि-

चित साधु-साध्वी-वर्ग को भी मस्या हुये बिना न रह सका। श्री जडावबाई ने कुछ ही वर्षो का सौभाग्य देखा था। पति सेवा में सदा निरत रहने से सब ससार उन्हें सूना दिखाई दिया। कौटुम्बिक सम्बन्ध उन्हें बन्धन से प्रतीत होने लगे।

वैराग्य जीवन

वैराग्य वृत्ति तो उनके सौभाग्यमय गृहस्थ जीवन में थी। अब सहसा पतिदेव के वियोग के वज्रपात हो जाने से उन्होंने यही विचार किया कि संसार असार है, दुःखमय है। मुझे तो श्री वीतराग प्ररूपित चारित्र धर्म अंगीकार करना चाहिये। ऐसा दृढ निश्चय उन्होंने कर लिया। उन्होंने पति वियोग के दुःख के आवेश में आकर सहसा दीक्षा अंगीकार नहीं की अपितु उन्होंने यथार्थ रीति से सारे कुटुम्ब की सहर्ष आज्ञा मिलने पर ही दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा की। इस हेतु से उन्होंने अपनी दीक्षा के लिये भी अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिये वैराग्यमय जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया और इन्द्रिय दमन के लिये उग्र तपस्या करना शुरु किया। उन्होंने एक मास क्षमण (३० उपवास) और लगातार ६० वेले (२ उपवासका) किये और हर पारणे के दिन आयंबिल करते थे। बीस स्थानक तप, नवपदादि तप आराधन किया। लगातार पांच वर्षतक पांचों विगय का सर्वथा त्याग रखा। केवल घृत विगय का उपयोग रखते थे। उन्होंने श्रीसम्मेत शिखरजी, श्रीसिद्धाचलजी, श्री केशरियानाथजी, श्रीआबू

जी, जैसलमेर, लोद्रवा पार्श्वनाथजी आदि कई तीर्थ स्थानों का पर्यटन कर आत्मा को पवित्र बनाया। आपने श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथजी का "६ री" पाली संघ लोहावट से निकलवाया। सुपात्र तथा अनुकम्पा दान भी प्रचुर मात्रा में दिया। सदा धार्मिक काम म ही दिन व्यतीत करते थे। इस कारण से लोहावट के श्रीसंघ ने श्री जिनमन्दिर और धर्मशालाओं का कार्य उनकी देख भाल मे रख दिया, जिनका सचालन उन्होंने बहुत ही सुचारूरूप से किया देव द्रव्य की तनिक भी हानि या दुरुपयोग नहीं होने दिया। किन्तु हर प्रकार से उसकी वृद्धि ही करते रहे।

उन्होंने तो पहले से ही प्रतिज्ञा कर रखी थी कि सब कुटुम्ब की सहर्ष आज्ञा से ही दीक्षा अंगीकार करूंगी। और अपने इस प्रकार से वैराग्यमय रूक्ष जीवन से परीक्षा की तैय्यारी करते रहे। परन्तु अपने से पहले ही प्रेरणा व सहायता से ४-७ बहनो को चारित्र धर्म में जुड़ा दिया और खुद आज्ञा की प्रतीक्षा मे रहे।

कौटुम्बिक लोगो का यह मिथ्या भ्रम था कि अधिक दिन बीत जाने पर श्री जडावबाई का वैराग्य भाव शान्त हो जावेगा। इसलिये उन्होंने आज्ञा देने का समय लम्बा कर दिया। किन्तु जिनके दिल में सच्चा वैराग्य हो, नस नस में चारित्र की भावना हो, जो ससार की क्षणभंगुरता से भली भांति परिचित हो जिसे आत्म-कल्याण की धुन हो, उनके लिये समय शिथिलता नहीं ला सकता किन्तु उनके हृदय में वैराग्य भावना बढती ही रहेगी।

प्रसंगवश यहां इतना उल्लेख आवश्यक समझता हूँ कि आपके महोदर श्री सूरजमलजी की सुपुत्री श्री विरजूबाई' जिनकी आयु उस समय केवल ७ वर्ष की थी, उनके साथ ही ३ वर्ष तक रहीं और संसार के सब कार्यों से विरक्त हो केवल धर्मध्यान में ही लगी रहती थी। पाठकों को सहसा इसमें विश्वास न हो किन्तु यह बात अक्षरशः सत्य है। इसकी पुष्टि में यहां केवल इतना ही उल्लेख उपयुक्त समझता हूँ कि, ३ वर्ष तक श्री विरजूबाई ने ऐसी छोटी उम्र होते हुये भी कुटुम्ब के भी किसी भोजन या विवाह में भाग नहीं लिया। उनका क्रीडास्थल ही जैन मंदिर और जैन धर्मशाला थी। उनके खिलौने थे धार्मिक ग्रन्थ और उनकी वैराग्य सहचरी थी उनकी भूआ श्री जड़ावबाई। श्री विरजूबाई के जीवन का वृत्तान्त बड़ा ही रोचक है, जिसमें इस जीवन-चरित्र में देना अनुपयुक्त है। यहां तो केवल इतना ही लिखना उचित समझता हूँ कि अपनी भूआ श्री जड़ावबाई के सहवास में रहकर पवित्र संस्कारों से संस्कृत हो उत्तम वैराग्य भावना को पैदा कर उनके साथ ही दीक्षा अंगीकार की। श्री विरजूबाई का नाम दीक्षा के बाद "श्रीमती वल्लभश्रीजी" है। उनका जीवन चरित्र एक पृथक विषय होने से इसमें नहीं दिया गया है।

दीक्षा

ग्रामानुग्राम विहार करते हुये वृहत् खरतरगच्छीय श्रीमत्सुख-सागरजी महाराज के समुदाय की प्रवर्तिनी सौम्यमूर्ति श्रीमति

लक्ष्मीश्रीजी महाराज की शिष्या अप्रमत्त उत्कृष्ट क्रियापात्री प्रवर्तिनी श्रीमति शिवश्रीजी महाराज का शुभागमन लोहावट में हुआ। प्रवर्तिनीजी महाराज ने अपने सुमधुर व्याख्यान में श्री उत्तराध्ययन सूत्र पढते हुये, एक दिन व्याख्यान में फरमाया।

"चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सुइ सद्धा, सजमम्मि य वीरियं ॥

अर्थात् हे भव्य आत्मा ! इस ससार में प्राणि मात्र को चार अग की प्राप्ति महान् कठिन है। वे ४ अग ये हैं। (१) मनुष्यभव (२) श्रुत-सिद्धान्त का श्रवण (३) उनपर श्रद्धा और (४) सयम में वीर्य शक्ति।

प्रथम तो इस ससार में भव भ्रमण करते हुये जीव को मनुष्य जन्म मिलना ही महान् दुष्कर है। यदि सद्भाग्य से मनुष्य जन्म मिल भी जावे तो आर्य देश, उत्तम कुल, दीर्घायु, पंचेन्द्रिय की निरोगता और देव, गुरु, धर्म का सुयोग मिले बिना केवल मनुष्य भव ही सार्थक नहीं हो सकता। क्योंकि इन सुयोगों से ही वीतराग प्ररूपित सूत्र-सिद्धान्त सुनने का कठिन श्रेय प्राप्त हो सकता है।

यदि आगम-श्रवण का सुयोग भी पुण्योदय से हो जाय तो भी सर्वज्ञ भगवान के वचन पर अटूट श्रद्धा-आस्तिकता होना तो उससे भी महान् दुर्लभ है। और यदि भगवान के वचन पर श्रद्धा भी कदाचित् हो जाय तो सबसे अधिक दुष्कर तो सयम (चारित्र) अंगीकार करके उसमें वीर्यशक्ति उत्पन्न करना, अर्थात् सम्यग्चार

ग्रहण करना और ग्रहण करके भी उसमें पूर्ण पुरुषार्थी होना तो महान से भी महान कठिन है।

इन चार अंगों की प्राप्ति में ही सम्यग ज्ञान, सम्यग दर्शन, सम्यग् चारित्र, उत्पन्न होते हैं। जिनसे कर्मों से मुक्ति अर्थात मोक्ष सुख मिलता है। हे भव्य आत्मा! आपको मनुष्य भव और सर्वज्ञ भगवान के रचे हुये सूत्र सिद्धान्त सुनने का अवसर तो पुण्य के प्रताप से मिल गया है। अब भगवान के वचन पर श्रद्धा रखना और यथाशक्ति देशविरति अथवा सर्वविरति चारित्र अंगीकार करना परम श्रेयस्कर है, जिससे आपको उपरोक्त रत्न भव की लब्धि हासिल हो जावे, और अक्षय मोक्ष सुख का आनन्द मिले।

प्रवर्तिनीजी महाराज के इस उपदेश ने उनकी वैराग्य भावना में वेग डाल दिया। और उन्होंने अपने कुटुम्ब के लोगों से दीक्षा के लिये सविनय अनुमति मांगी। पांच वर्ष के वैराग्यमय जीवन से सबको अच्छी तसल्ली हो गई थी कि उनमें सच्चा वैराग्य है। विद्याभ्यास भी काफी हासिल कर लिया है। प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये सर्वथा योग्य है। अतः उन्हें दीक्षा ग्रहण करने की अनुज्ञा सहर्ष मिल गई। विक्रम संवत १९६१ मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी का दीक्षा-मुहुर्त निश्चित हुआ।

श्री जडावबाई के कुटुम्ब वालों ने उनकी दीक्षा के अवसर पर प्रचुर मात्रा में अपनी न्यायोपार्जित लक्ष्मी का सदुपयोग किया। अठाई महोत्सव, पूजा-प्रभावनायें हुई। दीक्षा समारोह पर जोधपुर,

फलोदी, बीकानेर, अजमेर, तिवरी आदि कई स्थानों से बहुत लोग सम्मिलित हुये।

श्री जडावबाई तथा श्री निरजुबाई का दीक्षा मुहूर्त ठीक सूर्योदय का समय का था। दीक्षा का बरघोड़ा समारोह पूर्वक निकाला गया। उनकी दीक्षा खरतरगच्छीय परोपकारी, प्रबल प्रभावशाली श्री सुखसागरजी महाराज के समुदायवर्ती, गणनायक, ज्ञानोन्नति कारक, महान् तपस्वी, ४३ निवम अनशन धारक, मुनिराज श्री छगनसागरजी महाराज की अध्यक्षता में, प्रवर्तिनीजी श्रीशिवश्रीजी महाराज के कर कमलों से चतुर्विध संघ समक्ष समारोह पूर्वक सम्पन्न हुई।

उस समय श्रीजडावबाई की आयु २३ वर्ष और बाल ब्रह्मचारिणी श्री निरजुबाई की आयु १० वर्ष की थी। गुरु महाराज ने जडावबाई को "ज्ञानश्रीजी" और निरजुबाई को "वल्लभश्रीजी" के नाम से दीक्षित किया और दोनों श्रीशिवश्रीजी महाराज की शिष्यायें हुई।

जैन परम्परा के अनुसार लघु दीक्षित साधु साध्वी की योग्यतानुसार योगोद्वहन कराकर बड़ी दीक्षा दी जाती है। श्रीमति ज्ञानश्रीजी तथा श्रीमति वल्लभश्रीजी की बड़ी दीक्षा लोहावट में सं० १९६१ माघ शुक्ला ५ को गणाधीश श्री छगनसागरजी महाराज के करकमलों से हुई।

बडी दीक्षा की क्रिया समाप्त होने पर महान् तपस्वी श्री छगनसागरजी महाराज ने नव दीक्षिता श्री ज्ञानश्रीजी व श्री वल्लभश्रीजी करते हुए फरमाया कि—

"चारित्र धर्म महान कठिन है। इस पर दृढता से चलना तलवार की धार पर चलने से भी महान् दुष्कर है। जब तुम पवित्र जैन चारित्र मे दीक्षित हो गई हो, तो तुम्हें समझ लेना चाहिये कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है। तुम इस अभिमान में फूल मत जाना कि हमने भगवान महावीर का वेष अंगीकार कर लिया है और हम पूज्या बन गई हैं। इस पवित्र वेष को तुम नाटक के पात्रो जैसा मत समझ लेना। आज से तुम पर तुम्हारी व श्री जिनशासन की उन्नति का भार है। इसको उत्तम प्रकार से उठाना और अपनी पवित्र दीक्षा को सार्थक करना।

देखो, एक सेठ के ४ पुत्र थे, और उनकी ४ पुत्र वधुए थीं। सेठ जी ने अपनी जरावस्था का विचार कर गृहस्थी का भार सौंपने के लिये कुटुम्ब और सम्बन्धियों को एकत्रित किया। अपनी पुत्र वधुओं की परीक्षा के लिये हर एक को ५-५ चावल दिये और सूचना कर दी कि इन चावलों को हिफाजत से रखना। दो वर्ष के बाद मैं इसका हिसाब पूछूँगा। सबसे बडे पुत्र की वधू ने सोचा कि इन पाच चावलो को कहा सभालूँगी। ऐसे चावल तो घर में भी बहुत पडे है। जब ससुरजी हिसाब पूछेंगे तो उनमें से ही ला दूगी। ऐसा विचार कर उसने तो वे पाच चावल फेंके।

दूसरी पुत्र-वधू ने सोचा की चावला की हिफाजत तो यहां कठिन है। मगर इनको फैंक देना भी उचित नहीं। किसी न किसी कारण से ससुरजी ने दिये है, तो कम से कम इनको पेट में ही खा लेना चाहिए। जिससे कुछ न कुछ गुण ही होगा। तीसरी पुत्र-वधू ने सोचा कि इन चावलों को हिफाजत के लिये अपने अनमोल आभूषण की पिटारी में रख देना चाहिये। सबसे छोटी पुत्र वधू ने विचार किया कि ससुरजी ने ५ चावल सौंपे हैं सो ५ के ५ ही उन्हें वापस दें तो इस में तारीफ ही क्या? इसलिये उसने उन चावलों को अपने भाई के यहां भेज कर कहला दिया कि इनको खेती के समय जुदे क्यारे में बो देना और उनकी निपज हो उसे भी बोते रहना। इसका हिसाब अलग रखना। जब मैं मगाऊँ तब भेज देना।

हमने तुम्हें पंच महाव्रत रूप पांच चावल सौंपे हैं। उन्हें अज्ञानता से फैंक मत देना। न उनका दुरुपयोग कर भक्षण ही करना। केवल उनको जैसा का तैसा ही रखकर ही सन्तुष्ट मत हो जाना। किन्तु इनका विकास कर ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि अन्यगुणों का उपार्जन करना जिससे तुम्हें अन्त में मोक्ष सुख मिलेगा और श्री जिन शासन की भी बड़ी भारी उन्नति होगी।

श्री ज्ञानश्रीजी और श्री वल्लभश्रीजी ने गुरु महाराज के सम्मुख हाथ जोड़ कर चतुर्विध संघ की साक्षी में प्रतिज्ञा की कि हम आपके सदुपदेश का यथाशक्ति अवश्य पालन करेंगी।

और सयम के पालन में किसी प्रकार की न्यूनता न रखेंगी और हमारी पूरी शक्ति से उसका विकास करेंगी और श्री जिनशासन की यत्किंचित सेवा जो हमसे बन सकेगी, उसमें कमर नहीं रखेंगी।

पाठक वृन्द ! श्रीमति ज्ञानश्रीजी महाराज का जीवन चरित्र नीचे दिया जायगा। उसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। उस जीवन रेखा से आपको मालूम हो जायगा कि उन्होंने बड़ी दीक्षा के समय दिये हुये गुरुमहाराज के अमूल्य उपदेश का कितनी दृढता से पालन किया।

गुरु विनय तथा पारस्परिक प्रेम भाव

आपने जीवनपर्यन्त सदा अपने गुरुवर्य समुदाय के अधिपति पूज्यवर्य श्री छगनसागरजी महाराज जैनाचार्य श्री जिनहरिसागर सूरिजी महाराज तथा वीरपुत्र श्री आनन्दसागरजी महाराज आदि सब मुनिराजों की आज्ञा का पालन एवं सदा उनका विनय करते रहे।

आपने दो चातुर्मास अपने गुरुणीजी महाराज के साथ किये। सदा उनकी आज्ञा पालन करने में, उनका पूर्ण विनय करने में, तत्पर रहती थीं। दीक्षा से ४ वर्ष बाद पूज्य गुरुवर्य्या के स्वर्गारोहण के पश्चात् १० वर्ष तक, अपनी बड़ी गुरु बहनों प्रवर्तिनी श्रीमति प्रतापश्रीजी महाराज श्रीमति देवश्रीजी महाराज श्रीमति विमलश्रीजी महाराज और विद्या प्रदायिका श्रीमति

प्रेमश्रीजी महाराज के साथ विहार कर पारस्परिक अतुल प्रेम को बढ़ाया। पाचों गुरु बहनों में आदर्श प्रेम था। समुदाय का सब कार्य आपस में मिलकर एक राय से करते थे। आप यद्यपि सब गुरु बहनों में छोटी थी तथापि सब गुरु बहनें आपकी राय को सदा महत्व देती थी क्योंकि आपकी सलाह निष्पक्ष, निडर और विचार पूर्ण होती थी।

ज्ञानाभ्यास

गुरु महाराज तथा गुरु बहनों की अतुल कृपा से आपने अप्रमत्त होकर विद्याभ्यास किया। यद्यपि आपकी आयु विद्याभ्यास के लिये अधिक थी किन्तु आप इतना परिश्रम करती थीं कि वह छोटी उम्र वाली साध्वियों के लिये एक सबक अनुकरणीय रूप था। थोड़े ही समय में आपने व्याकरण, न्याय, काव्य, कोष, छन्द का ज्ञान हासिल कर लिया, और जैन शास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन किया। २६ वर्ष की अवस्था में जब आप पादरा पधारे तो परम आध्यात्मिक प० श्री देवचन्दजी महाराज के सपूर्ण ग्रन्थ जो अध्यात्मवेत्ता जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरीश्वरजी महाराज के सदुपदेश से अध्यात्म रास के स्व० श्री मोहनलाल हिमचद भाई वकील, श्री माणकलाल भाई, श्री भाईलाल भाई, श्री डगल-भाई, श्री प्रेमचन्द भाई इत्यादि के उद्योग से स्थापित श्री अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडल से प्रकाशित हुये थे, उनको अवलोकन करने का सौभाग्य मिला, तो मडल के प्रकाशित ग्रन्थ गुजराती लिपि

अथवा गुजराती भाषा में होने से आप उनका यथार्थ लाभ न उठा सके आपको इसका बहुत पश्चाताप हुआ, किन्तु हिम्मत न हारकर गुजराती लिपि को पढना प्रारम्भ किया। एक ही दिन में इतने परिश्रम व लगन से काम किया कि उसी दिन गुजराती अक्षरों का ज्ञान हासिल कर लिया, और थोडे ही दिनों में उन ग्रथों को पढना शुरु कर दिया। और आपने यह विचार किया कि अगर मुझे गुजराती अक्षर पढना आ जावे तो मैं यह सब ग्रन्थ अवलोकन कर लू। इस उत्कृष्ट भावना को लेकर आपने रात्रि व्यतीत की, और प्रात काल होते ही स्वत गुजराती अक्षर बिना अभ्यास पढने लग गये, यह एक उत्कृष्ट भावना का प्रत्यक्ष परिणाम है। और वहा रहकर द्रव्यानुयोग के विषय का ज्ञान अच्छी तरह से हासिल कर लिया। उन्होंने अनवरत परिश्रम तथा ज्ञान जिज्ञासा से [illegible] उदाहरण कायम कर दिया, कि विद्याभ्यास के लिये [illegible] आवश्यक नहीं है किन्तु बड़ी उम्र वाला भी परिश्रम [illegible] जिज्ञासा से अच्छी विद्या प्राप्त कर सकता है।

विहार, चातुर्मास और तीर्थ[illegible]

आपने ३५ वर्ष के चारित्र जीवन में बहुत [illegible] रानपूताना, मारवाड, मेवाड़, गोडवाड़, [illegible] वाड़, मालवा और जैसलमेर में विहार [illegible] बीकानेर, उदयपुर, आबू, पालनपुर, [illegible] अहमदाबाद, पालीताणा, भावनगर, [illegible]

रतलाम, जावरा, मदसौर, इन्दौर, उज्जैन, जावद इत्यादि शहरों में पर्यटन कर हजारों की संख्या की परिषदों में धर्मोपदेश देकर खूब धर्म का प्रचार कर श्री जिन शासन की सेवा की। आपकी सदा यही इच्छा रहती थी, कि जितना विहार हो सके उतना ही अच्छा। एक स्थान पर अधिक रहने से साधु धर्म में स्खलना आती है और अति परिचय से लोगों के भाव में भी मोह बढ़ने लगता है। इसी हेतु से दीक्षा के बाद आपको जीवन के अन्तिम दिनों में वृद्धावस्था व अशक्ति के कारण तीन चातुर्मास फलोधी में लगातार करने पड़े। यद्यपि आपको कारणवश ३ चातुर्मास फलोदी में करने पड़े तो भी थोडी सी साध्वियों को अपने पास रख बाकी को स्थान स्थान पर चातुर्मास के लिये भेज देते थे। दीक्षा के बाद आपके चातुर्मास निम्न स्थानो पर हुये।

वि स	स्थान		वि स	स्थान	
१६६२	बीकानेर	(राजपुताना)	१६७०	जोधपुर	(मारवाड़)
१६६३	पाली	(मारवाड़)	१६७१	बीकानेर	(राजपुताना)
१६६४	फलोदी	"	१६७२	लोहावट	(जाटावास)
१६६५	ब्यावर	(राजपुताना)	१६७३	फलोधी	(मारवाड)
१६६६	जयपुर	"	१६७४	जोधपुर	(मारवाड)
१६६७	लोहावट	(जाटावास)	१६७५	लोहावट	(विसनावास)
१६६८	पालीताना	(काठियावाड)	१६७६	तिवरी	(मारवाड़)
१६६९	बड़ोदा	(गुजरात)	१६७७	प्रतापगढ	(मालवा)

वि स स्थान		वि स स्थान	
१९७८ मंदसौर	,,	१९८७ बीकानेर	(राजपूताना)
१९७९ तिंवरी	(मारवाड़)	१९८८ जोधपुर	(मारवाड़)
१९८ फलोधी	,,	१९८९ लोहावट	(जाटवास)
१९८१ पालीताना	(काठियावाड़)	१९९० खीचन्द	(मारवाड़)
१९८२ लोहावट	(विसनावास)	१९९१ लोहावट	(बिसनावास)
१९८३ सूरत	(गुजरात)	१९९२ खीचन्द	(मारवाड़)
१९८४ पादरा	,,	१९९३ फलोधी	(मारवाड़)
१९८५ अहमदाबाद	,,	१९९४ फलोधी	(मारवाड़)
१९८६ पालीताणा	(काठियावाड)	१९९५ फलोधी	(मारवाड़)

इस प्रकार ३४ चातुर्मास और दीर्घ विहार कर आपने जैन व जैनेतर जनता में पवित्र जैन तत्वों का दिग्दर्शन कराया। दीक्षा के बाद आपने जैसलमेर, श्री सिद्धाचलजी की पचतीर्थी, आबू सिरोही की पंचतीर्थी, तारंगा, भोयणी, गोडवाड़ की पचतीर्थी, पानसर, मक्षीजी, माडवगढ़, श्री केशरियाजी आदि तीर्थ स्थानों के दर्शन कर अपनी आत्मा को पवित्र किया।

आपकी अध्यक्षता में हुये मुख्य २ धर्मकार्य

मेरे मत से तो श्रीमती ज्ञानश्री जी महाराज का सबसे बड़ा कार्य "श्रीमती वल्लभश्रीजी महाराज" हैं। चारित्र धर्म में जिस पौधे को उन्होंने अपने साथ ही लगाया, और अनवरत सिंचन

किया, उसका फल भी उन्होंने अपने जीवन में पा लिया। बाल ब्रह्मचारिणी-विदुषी रत्न श्रीमती वल्लभश्रीजी महाराज यद्यपि आपकी हस्त दीक्षिता या शिष्या नहीं हैं, तथापि बाल्यावस्था से ही आपके संसर्ग और छत्र छाया में रहने और साथ में ही दीक्षा अंगीकार कर लेने पर आपने उनको इतने परिश्रम से उत्तम, और उच्चतम शिक्षा दी है, कि वे आज हमारे जैन समाज की एक आदर्श साध्वी हैं। श्रीमती वल्लभश्रीजी महाराज का जैन शास्त्रों का ज्ञान उनकी धारा प्रवाह मनोहर प्रभावशाली आध्यात्मिक और तात्विक व्याख्यान, उनकी अतुल सहनशीलता, उनकी निरभिमानता, सब सम्प्रदाय के प्रति समभाव, और उनका विवेक पूर्ण सद् व्यवहार, ये सब पूज्य श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज के निरन्तर सुशिक्षा का ही फल है।

(७) गुजरात में विहार करते समय जब आप अहमदाबाद पहुंचे तो ठहरने के लिये जो मकान मिला, वो बहुत ही छोटा था, और कुल साध्वी वर्ग ७४ की संख्या में थी। अहमदाबाद के खरतरगच्छीय श्री संघ ने आपको वहां चातुर्मास में विराजने की विनती की तो आपने अपने सहज हास्य से फरमाया कि हम इतनी साध्वियां बैठी हुई भी इस छोटे से मकान में कठिनता से समाती हैं, तो फिर सोई हुई कैसे समायेंगी। आपने जो श्रीमज्जिन कृपाचन्द्रसूरिजी के सदुपदेश से की हुई धर्मशाला (मखत शाह की हवेली) झगड़े में डाल रखी है, तो फिर हम कहां ठहरेंगी। इस पर आपके सदुपदेश से अहमदाबाद के

खरतरगच्छीय श्री संघ ने मन भफट मिटाकर उस धर्मशाला को स्वाधीन करली।

(३) मालवा में विहार करते हुये जब आप दशपुर (मंदसौर) पधारे, तो आपकी अध्यक्षता में श्रीमती वल्लभश्रीजी महाराज के व्याख्यान में हजारों की तादाद में श्रोतागण आया करते थे। मन्दसौर राज्य के उच्च पदाधिकारी सूबा रफतुल्लाहल्ला साहब प्रतिदिन अपने राज्य कर्मचारियों सहित व्याख्यान श्रवण करने को आया करते थे। उन पर महाराजश्री के उपदेश का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने लश्कर दरबार से हुक्म मगवाकर गाव के तालाब में मछली मारने की मनाई करवायी और मदसौर में भी जीव हिंसा की मनाई के लिये पत्थर रोपवा दिये गये-मदसौर में आपके उपदेश से पोरवालो ने एक धर्मशाला भी बनवाई।

(४) मालव में विहार करते हुये जब आप प्रतापगढ़ पधारे, वहा भी आपकी अध्यक्षता में श्रीमती वल्लभश्री जी म० के दिये हुये व्याख्यानों में बहुत तादाद में जैन जैनेतर व राज्य पदाधिकारी आया करते थे। फैलते २ आपके धर्मोपदेश की प्रशंसा रानीवास में पहुची तो रानी साहबा श्रीमती दयाकुवर बाई साहबा ने आपको धर्मोपदेश देने के लिये रानीवास में बुलायी। वहा आपकी अध्यक्षता में श्रीमती वल्लभ श्रीजी म० का उपदेश अहिंसा के विषय पर हुआ। इस प्रकार आपका समागम रानी साहबा व राज्य परिवार से हुआ, और उन्होंने अष्टमी, चतुर्दशी, एकादशी

और अमावस्या को शिकार न करने व मांस भक्षण न करने की प्रतिज्ञा की। प्रतापगढ़ के युवराज कंवर श्री रायसिंहजी साहब ने ता० ४-१-१९७४ ईस्वी सन को कौवा, कबूतर, कमेड़ी, चिड़िया कागर, कुत्ता और बिल्ली मारने का आजीवन पर्यन्त त्याग किया, और अष्टमी, चतुर्दशी, एकादशी और अमावस्या के दिन शिकार न करने की भी प्रतिज्ञा की। इस प्रकार आपके साथ अन्य कई राजपुत्रों ने भी त्याग किया। इस प्रकार एक सुयोग्य राजकुंवर पर आपकी देशना का प्रभाव पड़ने से अहिंसा का उद्योत हुआ। रानी साहबा ने आपके उपदेश से एक कन्या पाठशाला खुलवाई।

(५) खीचन्द में श्री हजारीमलजी कोठारी की धर्मपत्नी केशरबाई ने आपके उपदेश से विद्यार्थियों के लिये पाठशाला का विशाल भवन बनवाया।

(६) बालकों की अपेक्षा भी बालिकाओं की शिक्षा पर आपका विशेष लक्ष्य था। उनकी यह पूर्ण मान्यता थी कि जैन समाज और खासकर मारवाड़ी जैन समाज की अवनति का मुख्य कारण माताओं की अशिक्षा है। इस हेतु को ध्यान में रखकर लोहावट जाटावास में आपके उपदेश से कन्याशाला का चन्दा किया गया और पाठशाला का उद्घाटन वीरपुत्र श्री आनन्द सागरजी म० के कर कमलों से कराया। और पाठशाला का नाम उद्योत कन्या पाठशाला रखा गया। इस पाठशाला में बालिकायें धार्मिक एवं व्यवहारिक शिक्षा प्राप्त करती हैं।

(७) विद्या प्रचार तो आपके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। आपकी प्रेरणा से मुर्शिदाबाद निवासी श्री राजा विजयसिंहजी बहादुर की मातुश्री श्रीमती सुगनकुमारी जी ने रु० ७०००) की सहायता श्री वर्धमान जैन विद्यालय ओसीयां तीर्थ को दी। जीवन पर्यन्त आप इस विद्यालय की प्रेमपूर्ण प्रेरणा करती रही और मदद भी दिलवाती रही।

(८) फलोधी निवासी सेठ श्री हस्तीमलजी गोलेछा और उनकी धर्मपत्नी श्री विजयबाई (प्रख्यात नाम गूजरजी) ने आपकी अध्यक्षता में जैसलमेर (लोद्रवा) पार्श्वनाथजी की यात्रा के निमित्त '६ री' पाली संघ निकलवाया। श्रेष्ठीवर्य ने अपने ६० वर्ष की आयु में अपनी धर्मपत्नी सहित तथा उनके सब कुटुंब ने चैत्र मास की ग्रीष्म ऋतु में अठाई की, तपस्या कर वरघोड़ा आदि का समारोह पूर्वक महोत्सव किया। सेठजी आप श्री के परम भक्त थे। उनके देहावसान के पश्चात् उनकी धर्मपत्नी गूजरजी का धर्म प्रेम उसी प्रकार कायम है। उन्होंने तथा उनके पोते मनोहरमलजी ने "फलोधी" में एक विशाल "धर्मशाला" श्री हस्तीमलजी फतेहलालजी गुलेछा की खरतरगच्छीय नवीन जैन श्वे० धर्मशाला वि० स० १९९२ म निर्माण कराकर वि० स० १९९३ में श्री संघ को समर्पण की। महाराज श्री के अन्तिम दिन भी अपने भक्त की धर्मशाला में ही निकले थे। महाराज श्री से इस विख्यात कुटुम्ब का धर्मस्नेह ३० वर्ष से रहा है। महाराज साहब के सदुपदेश से इस कुटुम्ब ने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग धार्मिक कार्यों में बहुत

किया है और अनतर प्रचुर मात्रा में कर रहे हैं। स्थानीय धर्म कार्यों में गुजरजी का भाग प्रशंसनीय रहता है। और तन, मन, धन से वे योग देती हैं।

(९) फलोधी निवासी श्री नेमीचन्दजी दुगड़ की धर्मपत्नी कोला बाई ने आपके उपदेश से मास क्षमण की तपस्या कर ज्ञान पचमी का उद्यापन बड़े समारोह पूर्वक किया और बहुत ही खर्च कर कई धर्म स्थाना में सहायता की और अर्थ सहित पच प्रति क्रमण की पुस्तकें छपाकर भेट वितीर्ण की। उसमें कोला बाई ने आपके पास दीक्षा अगीकार की और उनका नाम श्री हेमश्री जी है।

(१०) फलोधी और लोहावट के बीच में १६ मील का फासला होने से साधु साध्वियों का विहार इतना लम्बा होना बड़ा कठिन होता है। मार्ग में विश्राम के लिये कोई स्थान नहीं था। फलोधी निवासी श्री लिछमीलालजी गुलेछा की धर्मपत्नी जड़ाव बाई ने लोहावट और फलोधी के बीच छीला गाव में एक धर्मशाला बनवादी। इस धर्मशाला के बनजाने से एक अच्छा विश्राम स्थान बन गया है। जड़ाव बाई ने भी अन्त में आपके पास दीक्षा अगीकार की और उनका नाम हुशियारश्री जी है।

(११) तिवरी के ओस्तवाल चुनीलालजी के सुपुत्र-जुगराजजी की धर्मपत्नी जेठी बाई ने आपके सदुपदेश से मासक्षमण की तपस्या कर श्रीज्ञानपचमी का उद्यापन महोत्सव कर विपुल द्रव्य

चर्य पर लाभ उठाया। शीघा म उनका नाम जिनश्री जी है और सहनशीलतादि गुणों से विभूषिता है।

(१२) सूरत (गुजरात) निवासी झवेरी प्रेमचन्द भाई कल्याणचन्द भाई ने आप श्री के सदुपदेश से श्री सिद्धक्षेत्र पालीताना में एक विशाल धर्मशाला बनवाई, जो "कल्याण भवन" के नाम से प्रसिद्ध है।

(१३) साध्वियों तथा श्रावक श्राविकाओं के अध्ययनार्थ फलोधी निवासी श्री फूलचन्दजी झाबक, श्री अमरचन्दजी घारू, पं. लेखीचन्दजी वैद, श्री किसनलालजी लूणावत और गुरु महाराज में एक प्रसिद्ध जैन साहित्य, व्याकरण वेत्ता पंडित श्री मुकुन्दलालजी मथुरी को आपश्री के सदुपदेश से रखा। उनके पास प्राय २८ व्यक्तियों ने उच्च जैन साहित्य का अध्ययन किया।

(१४) लोहावट (जाटावास) के जैन धर्मस्थान में एक विशाल हाल आपके सदुपदेश से बनवाया और बिसनावास में एक धर्मशाला आपके उपदेश से कल्याणमल ड्रांगरा ने बनवाई है।

शिष्या वर्ग और उनका विवरण

आप श्री ने अपने कर कमलों से अनेक साध्वियों को भागवती दीक्षा दी, और उनको ज्ञान में जोड़कर

आत्मा का कल्याण किया। आप श्री के आज्ञानुयायिनी साध्वियं तथा शिष्याओं की नामावली निम्न प्रकार है।

(१) विदुषी रत्न श्रीमती वल्लभश्रीजी म० (आज्ञानुयायिनी)
(२) स्व० श्री अलोपश्रीजी म०　(३) श्री प्रधानश्रीजी म०
(४) श्री चंदनश्रीजी म०　(५) स्व० श्री कमलश्रीजी म०
(६) श्री सुमतिश्रीजी म०　(७) स्व० श्री विजयश्रीजी म०
(८) स्व० श्री बुद्धिश्रीजी म०　(९) स्व० श्री मणिश्रीजी म०
(१०) श्री गुप्तिश्रीजी म०　(११) श्री सपनश्रीजी म०
(१२) स्व० श्री गुणमालश्रीजीम०　(१३) श्री जिनश्रीजी म०
(१४) स्व० श्री सुबोधश्रीजी म०　(१५) श्री हेमश्रीजी म०
(१६) श्री प्रवीणश्रीजी म०　(१७) श्री अशोकश्रीजी म०
(१८) श्री समताश्रीजी म०　(१९) श्री विद्वान्श्रीजी म०
(२०) श्री हुशियारश्रीजी म०　(२१) श्री मनोहर श्रीजी म०

आपकी हस्तदीक्षित साध्वियों में "श्री प्रवीणश्रीजी, श्री अशो श्रीजी और श्री समताश्रीजी गुजरात प्रान्त के पादरा शहर की है जिन्होंने तपागच्छीय होते हुये और श्री प्रवीणश्रीजी की सहोद और श्री अशोकश्रीजी की जेठाणी तपागच्छ में दीक्षित होते ह भी आपके अतुल गुणों और क्रिया शीलता से मुग्ध होकर क परिचय न होते हुये भी स्व० श्री मोहनलाल हेमचंद भाई वकी (अध्यक्षश्री अध्यात्म ज्ञानप्रचारक मंडल) की सलाह से आप पास दीक्षा अंगीकार की।

पाठक वृन्द! आज कल जैन समाज में चारित्र धर्म की महत्ता का योग्य विचार न करते हुये, केवल दीक्षा दे देने का प्रचलन बहुत हो गया है। दीक्षा दे देने के बाद नव दीक्षितों को किस प्रकार शिक्षा दी जाय, किस प्रकार उनका अनुशासन किया जाय इन बातों पर बहुधा गुरुवर्ग उदासीनता रखते हैं। केवल भेष बदला कर वे अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। कटु परिणाम हम सब देखते हैं और समाचारपत्रों में पढ़ते भी हैं। जिस उत्साह से उनको दीक्षा दी जाती है और जिस उमंग से वे दीक्षा अंगीकार करते हैं थोड़े ही समय में वे जाते रहते हैं। हमारी चरित्र नायिका ने अपने शिष्या वर्ग को उत्तम प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी। माता के समान प्रेमयुक्त कठोरता रखी, उनको विनय युक्त तथा व्यवहार कुशल बनाया, विद्याध्ययन और ज्ञान गोष्ठी में उनका प्रेम बढ़ाया, और चारित्र पालन में तनिक भी शिथिलता न होने दी। यही कारण है कि आपके शिष्या वर्ग में बहुत ही पारस्परिक प्रेम और विनयभाव है।

क्रियापालन, आत्म भावना, और तपस्या

स्वयं उत्कृष्ट क्रिया पालकर अपनी शिष्या समुदाय को उसी प्रकार क्रिया पालने में बाध्य करना, यह उनका स्वाभाविक नियम था। न तो वे खुद प्रमादवश अपनी क्रिया में शिथिलता करते, न वे अपनी किसी शिष्या की यत्किंचित् क्रिया की लापरवाही सहन करते थे। अपने ज्ञान ध्यान के समय के सिवाय वे सब अपनी

शिष्याओं पर दया भाव करते रहते, और सदा उनको उत्कृष्ट चारित्र पालने का उपदेश देते रहते थे। वे सदा कहते रहते कि उत्तम चारित्र से ही हम धर्म की ओर लोगों का आकर्षण कर सकते हैं। क्रिया हीन जीवन लोगों में आशंका और नफरत पैदा करने लगता है। और उत्तम क्रिया युक्त जीवन से लोगों में श्रद्धा होती है और उसी से उपदेश का प्रभाव पड़ सकता है।

आपमें गुणग्राहकता बहुत थी। हरेक व्यक्ति के गुण पर आपकी स्वाभाविक दृष्टि पड़ती थी। निष्पक्षता से आप किसी से भी गुण ग्रहण करने में निःसंकोच रहते थे। गुणवान व्यक्ति से मिलकर आपका चित्त सदा विकसित रहता था। वैराग्य भावना तो आप में ठूस २ कर भरी हुई थी। सदा आत्म निन्दा और पर गुण प्रशंसा में सलग्न रहती थीं। सबके सोने के बाद ३-४ घंटे रात को आत्म ध्यान करते, और दिन में २-३ घंटे मौन रखती थीं।

अन्तिम ३ वर्ष से आपने पाचों विगय का त्याग कर रखा था। और यह अभिग्रह ले लिया था कि मुझे श्री सीमन्धर स्वामी भगवान के दर्शन होंगे, और उनकी देशना सुन सकूंगी तब ही पाच विगय सेवन करूंगी। प्रात काल सदा अपनी नित्य क्रिया से निवृत्त हो के यह भावना भाती "मुझे अनशन कब उदय आवेगा, समाधि पूर्वक किस तरह देहावसान होगा, मोह दशा कैसे दूर होगी, कर्मों से सर्वथा कैसे मुक्ति होगी, जैनों की यह अवनत दशा कैसे दूर होगी, किस प्रकार उत्तम क्रिया और धर्म प्रेम जागृत होगा,

शन भावना सेपूर्णतया परिचित थीं विचार किया, कि यह रोग घातक है, और इसका कुछ नहीं इसलिये आपश्री ने अपने मुख से कोई वस्तु मांगे या किसी वस्तु की इच्छा का इशारा करें तो ही वो वस्तु दी जावे। अन्यथा औषधोपचार में केवल ४ द्रव्य शेष रख बाकी सब द्रव्यों का त्याग करा दिया और आपने सावधानी से सुनकर अपना अनुमति सूचक सिर हिलाकर धारण किये।

वैसाख सुदि ६ तक आपको औषधि देते रहे किन्तु आपकी इच्छा कुछ भी लेने की नहीं थी यह जान आपकी अनशन भावना की सहायता देने के लिये वैसाख सुदि १० को आपको चारों आहार का त्याग कराने का पूछा, तो आपने प्रफुल्लित वदन से अंगीकार सूचक सिर हिलाकर भव चरिय [अन्तिम] प्रत्याख्यान धारण किया।

आपकी बीमारी में द्रव्य उपचार के अतिरिक्त आपकी परम भक्त आज्ञाकारिणी श्रीमती वल्लभश्रीजी महाराज ने भाव उपचार स्वरुप श्री उत्तराध्ययन, श्रीदशवैकालिक, नन्दी सूत्र, विपाकसूत्र, अन्तगडदशाग, अणुत्तरोववाईसूत्र, समाधिशतक, साधु आराधना, आगम, हित शिक्षा भावना, मोमवार पूज्य प्रणाम का स्तवन, पद्मावती स्तोत्र, आदि २ सूत्र, सिद्धान्त, स्तवनादि १० दिन तक सुनाकर आपकी अन्तिम समय की अच्छी सेवा बजाई।

आपकी बीमारी की खबर जगह २ तुरन्त फैलगई और स्थान स्थान से बहुत से लोग दर्शनार्थ आने लगे और अनेक तार चिट्ठियें आपके स्वास्थ्य की हालत जानने के लिये आये।

पूज्य योगीराज शासन सम्राट आचार्य देव श्रीविजय शान्ति सूरिजी महाराज ने भी आपकी बीमारी की अवस्था में सन्देश भेजा कि इस उत्तम जीव को समाधि में भी शान्ति मिलेगी।

अन्त में वि० स० १६६६ के वैसाख सुदि ११ को सुबह ५ बजे चौरासी लक्ष जीव योनि से हाथ जोड़ त्रिविध समत क्षामणा करते हुये, आप श्री वेदनीय कर्मों का कर्ज चुकाते हुये, परम समाधि व आत्म जागृति के साथ अपने औदारिक मानव देह को त्याग कर स्वर्गधाम पधारी।

आप श्री के स्वर्गारोहण के समय एक दम प्रकाश हुआ देख आश्चर्य हुआ फिर अनुमान से ज्ञात हुआ कि यह तो आप श्री के स्वर्गारोहण के माहात्म्य का प्रकाश है। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ ही दिन बाद पत्र द्वारा ज्ञात हुआ कि ठीक उसी समय ब्यावर में भी आपकी गुरुबहिन श्रीमती प्रेमश्रीजी महाराज को भी ऐसा ही प्रकाश सहसा दीख पड़ा तो उनके मुख से तो यही शब्द निकले कि "आज मेरा रत्न चला गया"।

आपश्री का मरण एक पण्डित मरण हुआ। जन्म और मरण यह तो संसारचक्र का स्वाभाविक नियम है। बहुत लोग जन्म लेते हैं और मर भी जाते हैं, किन्तु जिनके जीवन से समाज को तथा धर्म को सहायता मिली हो, उनका जीवन ही केवल जीवन नहीं है किन्तु उनका मरण भी एक जीवन है जो सदा जागित रहता है। श्रीमती ज्ञानश्री जी का जीवन और मरण दोनों ही आदर्श हैं।

आपके स्वर्गारोहण की खबर हवा की तरह शहर भर में फैल गई, और फलोधी के श्रावकों ने तारों से जगह जगह इसकी इत्तला भेज दी।

आप श्री के देहावसान से स्थान २ के जैन संघ को बड़ा दुःख हुआ, जिससे समवेदना सूचक तार और चिट्ठियों का ढेर लग गया।

आपके स्वर्गारोहण पर आप श्री की विदुषी शिष्या श्री प्रवीण श्रीजी ने उसी समय गुरु विरहोद्‌गार रूप कविता बनाई।

आपकी अन्त्येष्टी क्रिया फलोधी श्रीसंघ ने बड़े समारोह से की। फलोधी निवासी तेजपालजी लूणकड, और लोहावटवासी भभूतमलजी पारख, तथा धनसुखदासजी चोपडा ने विशेषतया इस अवसर पर द्रव्य खर्च कर गुरु भक्ति की।

आप श्रीके स्वर्गारोहण के उपलक्ष्य में फलोधी में तेजपालजी लूणकड़ की ओर से और लोहावट में भभूतमलजी पारख की ओर से अठाई महोत्सव हुये।

अग्नि संस्कार की भूमि पर खीचन्द निवासी भीखमचन्दजी बोथरा की धर्मपत्नी सौभाग्य बाई की ओर से छतरी में चरण पादुका स्थापन की गई है। तथा फलोधी में सागर वाले वैद श्री सुगनलालजी की धर्मपत्नी वालूबाई की ओर से स्थानीय हस्तीमलजी गुलेछा की नवीन धर्मशाला में आपकी मूर्ति विराजमान की गई है।

लोहावट में श्री भभूतमलजी प्रेमराजजी पारख की तरफ से आपश्री मूर्ति स्थापन हो गई।

पाठक वृन्द ! इस प्रकार आपके सन्मुख स्वर्गीय साध्वी रत्न श्रीमती ज्ञानश्रीजी म० का जीवनचरित्र मैंने अल्पबुद्धि के अनुसार रखा है, आपश्री के जीवन से जो सुशिक्षा मिलती है, उस पर मनन करना ही हमारा कर्तव्य है, और यही इसके लिखने का हेतु है।

पाठक अब खुद विचार लें कि श्रीमती ज्ञानश्री जी म० ने अपनी दीक्षा के समय जो प्रतिज्ञा गुरु महाराज के समक्ष की थी, उसको किस प्रकार उत्तम रीति से निभाया और उसको ध्येय में रखकर कार्य किया।

इस जीवन चरित्र की सामग्री विनयादि गुण सम्पन्ना विदुषी श्रीमती जिनश्री जी म० ने देने की अपूर्व कृपा की है। जिसके लिये लेखक उनका अत्यन्ताभारी है।

यदि इस जीवन चरित्र से पाठकों को कुछ लाभ होगा, तो यह लेखनी सफल समझूंगा ॥ इति ॥

वि स १९९७ चैत्र शु० १४ आलेखनमिति

※ जय जिनेन्द्र ※

❀ सुभाषित रत्न संग्रह ❀

– का –

शुद्धि-पत्रक

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
पूज्यनीय	पूजनीय	२	१६
धनता	मधनता	३	१२
गुणो की	गुणा को	४	१३
आकृति गुणान्	आकृतिर्गुणान्	६	१८
गालियन्तो	गालिमन्तो	८	१०
सर्वार्थ	मर्वार्थ	१३	२
सग	मग	१३	८
आगो	आगी	१३	१२
चरेत	चरेत्	१३	१६
चन्द्रतमो	चन्द्रस्तमो	१४	२
कर्मानुगी	कर्मानुगो	१४	७
कीर्ति यस्य	कीर्तिर्यस्य	१४	१४
मलकाय	छलकाय	१७	४
प्रणामात	प्रणामान्त	१८	११
स्थिती	स्थितो	१६	१४
दशमी	दशमो	१६	१८

कुरूपाना	कुरूपाणां	२०	७
गमिलने	सम्मीलने	२०	२०
विद्वना	विद्वसा	२४	३
पाया परग	पारावरग	२४	१६
स्वख्य	स्वल्प	२५	८
कुरूपतया	कुरूपता	२५	१८
प्रीतिकरी	प्रीतिकरो	२७	८
कराला	करला	२७	६०
पण्डिते	पण्डितै	२७	१०
पुत्र	पुत्र	२७	२०
ह्री	ह्रि	२८	२
भयकर	भयकर	२९	६
तत्त्वबोध	तत्त्वबोध	३४	६
बुद्धे।	बुद्धे	३४	१४
भवन्ति	भवन्ति	३५	१६
काञ्चन	काञ्चन	३७	११
मत्र	मत्रो	३८	४
वेत्ति	वत्ति	३९	११
प्रमादत्त	प्रमादत्त	४०	१२
वञ्चयन्त	वञ्चयन्त	४२	१८
ध्यान मुभी	ध्यानमुभी	४३	१२
अस्त	अस्त	४३	१९

अष्ठगुण	अष्ठगुण	४५	७
पड्डिता	पण्डिता	४६	६
तिष्टति	तिष्ठति	५१	१२
मने	वने	५७	४
प्रभर	प्रभात	६०	४
पृचनीय	पूजनीय	६०	१६
प्यगासि	प्यागामि	६१	८
देमी	देम	६१	१७

❀ प्रासंगिक उद्गार ❀

वीर पुत्र श्रीमद् जिन-आनन्दसागरसूरि जी महाराज की आज्ञावर्तिनी प्रवर्तिनी विदुषी साध्वी श्री वल्लभश्रीजी महाराज आज विद्यमान हैं। उनकी विदुषी शिष्याओं में श्री कुसुमश्रीजी महाराज भी हैं वे बम्बई के श्री खरतरगच्छ जैनसंघ की विनति अनुसार गुरुआज्ञा मिलने पर अपनी गुरुबहिनें श्री हेमश्रीजी म० श्री समताश्रीजी म० और श्री निपुणश्रीजी म० के साथ बम्बई पधारी। सं० २०१७ का चातुर्मास पायधुनी पर आये हुए श्री महावीर स्वामी के मन्दिर के उपाश्रय में किया। इस चातुर्मास के समय में आपने श्रावक व श्राविका संघ को विविध विषयों पर अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा व्याख्यान सुनाये जो कि श्रोतावर्ग को बहुत रुचिकर प्रतीत हुए, मुझे भी उनका पुण्य परिचय प्राप्त होने पर आनन्द हुआ।

कुसुमश्रीजी महाराज बालब्रह्मचारिणी होने के साथ व्याकरण, काव्य, साहित्य आदि विषयों में अच्छी निष्णात हैं, उन्होंने दूसरी कृतियों के अतिरिक्त संस्कृत सुभाषितों का संग्रह किया है, जो कि उन्होंने मुझे एक बार बताया था, मैंने उस समय उन से विनति की कि यह संग्रह प्रकट होना चाहिये, जिस से बालक से लेकर

वचने का दरिद्रता ॥२॥

भावार्थ-वचन में दरिद्रता (तुच्छता-कमी) क्यों ? अर्थात् मधुर और प्रिय बोलना चाहिये।

वचनेऽपि दरिद्रत्वं, धनाशा तत्र कीदृशी ? ॥३॥

भावार्थ-जहां वाणी में भी दरिद्रता है, वहां धन की अभिलाषा कैसी ?

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥४॥

भावार्थ-सब धनो मे विद्या धन ही मुख्य है।

विद्या गुरूणां गुरुः ॥५॥

भावार्थ-विद्या गुरुओं का भी गुरु है।

निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥६॥

भावार्थ-तरुवर रहित देशों मे एरण्डा भी वृक्ष ही माना जाता है।

नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम् ॥७॥

भावार्थ-वन्ध्या स्त्री बच्चे को जन्म देने वाली विषम (भारी) वेदना को नही जान सकती है।

स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥८॥

भावार्थ-राजा अपने देश म पूज्यनीय होता है, और पण्डित सब देशों में पूजा जाता है।

पय.पान भुजङ्गाना केवल विषवर्धनम् ॥६॥

भावार्थ-सर्पों को पिलाया हुआ दूध मात्र जहर को बढाने वाला ही होता है।

न मूर्खजनसंपर्क', सुरेन्द्र भवनेष्वपि ॥१०॥

भावार्थ-देवलोक के इन्द्रभवनो में भी मूर्ख का सम्बन्ध होना ठीक नहीं।

गुणी च गुणरागी च, विरलः सरलो जन' ॥११॥

भावार्थ-गुणवान और गुण का रागी सरल मनुष्य कोई भाग्य योग से ही बनता है।

संपत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता ॥१२॥

भावार्थ-धनता और निर्धनता में यानी सुख में और दुःख में महापुरुषों की अवस्था (सदृशा) एक ही रहती है, सुख में सुखी नहीं होता और दुःख में घबराता नहीं है।

स्पर्धापि विदुषा युक्ता, न युक्ता मूर्ख मित्रता ॥१३॥

भावार्थ-पण्डित के साथ ईर्ष्या करना भी ठीक है परंतु मूर्ख की दोस्ती करना बुरी है।

नहि स्वदेह शैत्याय, जायन्ते चन्दन द्रुमा' ॥१४॥

भावार्थ-चन्दन के वृक्ष अपने शरीर की शीतलता के लिये उत्पन्न नहीं होत हैं, किन्तु दूसरे को ही शीतल बनाते हैं।

नहि सहरते ज्योत्स्ना, चन्द्रश्चाण्डाल वेश्मनि ॥१५॥

भावार्थ-चन्द्रमा अपने प्रकाश को चण्डाल के घर में से दूर नहीं हटाता है, अर्थात् राजा और रंक के घर में समान प्रकाश करता है।

छेदेऽपि चन्दनतरु, सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥१६॥

भावार्थ-काटनेपर भी चन्दन वृक्ष कुल्हाडे के मुँह को सुगंधित बनाता है।

परोपकाराय सतां विभूतयः ॥१७॥

भावार्थ-सज्जन पुरुषों की सम्पत्तियां परोपकार के लिये ही होती है।

प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥१८॥

भावार्थ-उत्तम पुरुष प्रारंभ किये हुवे कार्य को नहीं छोड़ते है।

सर्पो दशति कालेन, दुर्जनस्तु पदे पदे ॥१९॥

भावार्थ-सर्प समय पर काटता है और दुर्जन वारंवार काटता है यानी सताता है।

शशिना तुल्यवशोऽपि, निर्धनः परिभूयते ॥२०॥

भावार्थ-चन्द्रमा के जैसा निर्मल कुल होने पर भी दरिद्री पुरुष स्थान स्थान पर तिरस्कार पाता है।

अर्थो हि लोके, पुरुषस्य बन्धुः ॥२१॥

भावार्थ-जगत में पुरुष का बंधु धन ही है, क्योंकि धनवानों

का सब आदर करते हैं और निर्धन होने पर अपना सहोदर भाई भी सामने नहीं देखता।

मुखे च कटुता नित्य, धनिना ज्वरिणामिव ॥२२॥

भावार्थ-बुखार की तरह धनवानों के मुँह में हमेशा कटुतापन रहता है, यानी धन के मद में मदोन्मत्त बना हुआ बड़ा बड़ा (असभ्य वचन) वचन प्राय बोला करते हैं।

रिक्ता भवन्ति भरिता, भरिताश्च रिक्ता. ॥२३॥

भावार्थ-खाली भर जाते हैं, और भर हुवे खाली हो जाते हैं।

दारिद्र्यादधिक दु.ख, न भूत न भविष्यति ॥२४॥

भावार्थ-दरिद्रता से बढ़कर न कोई दुःख था और न होगा।

दारिद्र्यमेक, गुण कोटिहारी ॥२५॥

भावार्थ-एक दरिद्रता क्रोड़ गुणों की हरण करनेवाली होती है।

लोभाविष्टो नरो हन्ति, स्वामिन वा सहोदरम् ॥२६॥

भावार्थ-लोभातुर मनुष्य अपने मालिक को तथा बन्धु को मार देता है, सचमुच पाप का बाप लोभ ही है।

लोभेन बुद्धिश्चलति ॥२७॥

भावार्थ-लोभ दशा से बुद्धि भी चिलत हो जाती है, यानी लोभी मनुष्य हिताहित का ख्याल नहीं रखता है।

हतमपि च हन्त्येव मदन' ॥२८॥

भावार्थ-हत प्रहत को भी कामदेव मारता है।

कंदर्प दर्पदलने, विरला मनुष्याः ॥२६॥

भावार्थ-कामदेव के गर्व को नष्ट करने में कोई विरल मनुष्य ही होते हैं।

उदार चरितानान्तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥३०॥

भावार्थ-उदार चरित्रवालों का सारा पृथ्वीमंडल ही कुटुम्ब है, यानी वे उत्तम पुरुष समदृष्टि से सबको देखते हैं।

शुष्केऽपि हि नदीमार्ग, खन्यते सलिलार्थिभिः ॥३१॥

भावार्थ-सूखा हुआ भी नदी का स्थान पिपासुओं के द्वारा खोदा जाता है।

दातृ याचकयोर्भेद, कराभ्यामेव सूचित' ॥३२॥

भावार्थ-दातार और भिक्षुक का भेद उनके हाथों से ही हो सकता है, यानी दातार का हाथ ऊंचा रहता है, और याचक का हाथ नीचा रहता है।

परोपकार पुन्याय, पापाय परपीडनम् ॥३३॥

भावार्थ-दूसरे का भला करना पुण्य के लिये होता है और दूसरे को दुःख देना पाप के लिये होता है।

आकृति'गुणान् कथयति ॥३४॥

भावार्थ-मुखाकृति ही गुण बतलाती है।

क्षमा वीरस्य भूषणम् ॥३५॥

भावार्थ-वीरपुरुषों का आभूषण क्षमा गुण ही है।

यतो धर्मस्ततोजयः ॥३६॥

भावार्थ-जहा धर्म है, वहा ही विजय है।

काल सुप्तेषु जागर्ति ॥३७॥

भावार्थ-सोने पर भी काल तो सदा जागता रहता है।

कामातुराणां न भयं न लज्जा ॥३८॥

भावार्थ-विषयासक्त पुरुषों को न तो भय होता है और न लज्जा होती है।

चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा।

भावार्थ-चिन्तातुर को न आनन्द है और नहीं सुख की नींद आती है।

नदस्तुष्टो हस्ततालीं ददाति ॥४०॥

भावार्थ-सुखी (धनाढ्य) खुशी होता है तब तालियां बजाता है। देना लेना कुछ नहीं है।

लक्ष्मी पुण्यानुसारिणी ॥४१॥

भावार्थ-लक्ष्मी पुण्य के अनुसार मिला करती है।

स्त्रीणां च रुदितं बलम् ॥४२॥

भावार्थ-स्त्रियों का बल रोने में ही है

दोषान् गृह्णन्ति दुर्जनाः ॥४३॥

भावार्थ-दुर्जन निरन्तर अवगुण को ही ग्रहण करते हैं।

परोपदेशे पाण्डित्यम् ॥४४॥

भावार्थ-दूसरों को उपदेश देने में पण्डिताई करना अर्थात् "आप गुरुजी कांदा खावे, दूजाने परमोद बतावे"।

धातुषु क्षीयमाणेषु, शमः कस्य न जायते ॥४५॥

भावार्थ-धातु (शक्ति) क्षीण होने पर किसको शान्ति नहीं होती है ? अर्थात् सब को हो जानी चाहिए।

नरस्याभूषणं रूपं, रूपस्याभरणं गुणः ।४६॥

भावार्थ-पुरुष का भूषण रूप है और रूपका अलङ्कार गुण है।

ददतु ददतु गाली-र्गालीमन्तो भवन्तः ॥४७॥

भावार्थ-महानुभाव ! आप गाली देते ही रहो, गालियों की धारा वर्षाया कर, मैं बड़ी खुशी के साथ सुनता रहूँगा, क्योंकि आप गालियों का खजाना हैं।

यथा लाभस्तथा लोभः ॥४८॥

भावार्थ-जैसा लाभ होता है वैसा ही लोभ बढ़ता है, कहा भी है-'लोभे लक्खण जाय'।

महतामवतारो विश्वपालन हेतवे ॥४६॥

भावार्थ-तीर्थङ्करादि महापुरुषों का जन्म जगत् कल्याण के लिये होता है।

लोकोक्तिरपि यद्विप्रैर्नातीता वाच्यते तिथिः ॥५०॥

भावार्थ-लोक में भी यह कहावत है कि गयी हुई तिथि ब्राह्मण भी नहीं बाचता है।

सतोष, परम सुखम् ॥५१॥

भावार्थ–सतोष रखना यह उत्कृष्ट सुख है लोभ पर विजय प्राप्त करानेवाला अनुपम शूरवीर योद्धा सतोष ही है।

तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णा. ॥५२॥

भावार्थ-हमारी तृष्णा जीर्ण नहीं होती, परतु वृद्धावस्था में हम ही जीर्ण हो जाते हैं। यानी बुढापा आने पर भी प्रतिक्षण लोभ बढता जाता है।

दुर्लभ मानुष जन्म ॥५३॥

भावार्थ–मनुष्य जन्म मिलना अति दुर्लभ है।

यथा शील तथा गुणा ॥५४॥

भावार्थ–जैसा स्वभाव है वैसे ही गुण होते हैं।

रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि ॥५५॥

भावार्थ–पूर्वकृत पुण्य ही भयङ्कर स्थानादि से रक्षा कर सकता है। अत पुण्योपार्जन के लिये दानादि शुभ कार्य सतत करना चाहिये, यह पुण्य परम्परा से मोक्ष का कारणभूत होता है।

गुण पृच्छस्व मा रूप, शील पृच्छस्व मा कुलम् ॥५६॥

भावार्थ–गुण को पूछो, रूप को मत पूछो, सदाचार को पूछो, कुल को मत पूछो।

गुणो भूषयते रूप, शील भूषयते कुलम् ॥५७॥

भावार्थ–गुण रूप को शोभित करता है और सदाचार कुल को शोभायमान करता है।

स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संभवन्ति ॥५८॥

भावार्थ-निराकुल चित्त में बुद्धियों का विकाश हो सकता है।

बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ॥५९॥

भावार्थ-भूखा आदमी कौनसा पाप नहीं करता है ? अर्थात तमाम पापों के लिए तत्पर हो जाता है।

नैकत्र सर्वो गुणसन्निपातः ॥६०॥

भावार्थ-एक जगह संपूर्ण गुण नहीं मिल सकते हैं।

महाजनो येन गतः स पंथा ॥६१॥

भावार्थ-महापुरुष जिस रास्ते से गये, वही रास्ता श्रेयस्कर होता है।

अल्पश्च कालो, बहवश्च विघ्ना ॥६२॥

भावार्थ-समय तो थोड़ा और उपद्रव बहुत है।

वृथा वृष्टि समुद्रेषु, वृथा दीपो दिवापि च ॥६३॥

भावार्थ-समुद्र में वर्षा होना निरर्थक है और दिन में दीपक जलाना व्यर्थ है।

सर्वं पद हस्तिपदे निमग्नम् ॥६४॥

भावार्थ-हाथी के पैर में सब पैर समा जाते हैं, अर्थात् बड़ों में सब छोटों का समावेश हो जाता है।

अनायके न वस्तव्यं, न वसेद् बहुनायके ॥६५॥

भावार्थ-मालिक बिना नहीं रहना चाहिये और जहां अधिक मालिक हों वहां नहीं रहना चाहिये।

हत सैन्यमनायकम् ॥६६॥

भावार्थ-नाथ बिना की सेना का विनाश हो जाता है।

सार गृह्णंति पण्डिता. ॥६७॥

भावार्थ-विद्वज्जन तत्व को ही ग्रहण करते हैं।

विद्यया सह मर्तव्य, कुशिष्याय न दापयेत् ॥६८॥

भावार्थ-विद्या को साथ लेकर मरना अच्छा है, परन्तु अयोग्य शिष्य को नहीं देनी चाहिये।

नास्ति मेघसम तोय, नास्ति चात्मसम बलम् ॥६९॥

भावार्थ-वर्षा के समान पानी नहीं है, और आत्मा के समान बल नहीं है।

उत्तम स्वार्जितं भुक्तम् ॥७०॥

भावार्थ-अपना कमाया हुआ भोजन खाना श्रेष्ठ है, अर्थात् दूसरे की कमाई पर आश्रित न रहे।

पराधीन वृथा जन्म ॥७१॥

भावार्थ-दूसरों के आधीन रहकर जन्म व्यतीत करना निरर्थक है, आत्मार्थियों को सदा जागृत रहना चाहिये, कर्मों की पराधीनता में से छूटने के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये।

विद्या मर्त्यस्य भूषणम् ॥७२॥

भावार्थ-सब का आभूषण विद्या है।

मनसा चिन्तितं कार्यं, वचसा न प्रकाशयेत् ॥७३॥

भावार्थ-मनसे विचारा हुआ कार्य आवश्यकता बिना वाणी से प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

ज्ञानं भारः क्रिया विना ॥७४॥

भावार्थ-क्रिया रहित अकेला ज्ञान भारभूत है। यानी जहा सम्यग् आचरण नहीं किया जाता है वहा आगे बढ़ने का सुवर्णावसर प्राप्त नहीं होता यहां पर चारित्र का पालना "क्रिया" समझना।

संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥७५॥

भावार्थ-मनुष्य का उत्कृष्ट खजाना संतोष ही है, तृष्णा पर नियंत्रण करना उसे संतोष कहते हैं।

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते ॥७६॥

भावार्थ-सब स्थान पर गुण ही पूजे जाते हैं।

स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥७७॥

भावार्थ-स्वभाव (अपना विचार) मस्तक में रहता है।

अतिपरिचयादवज्ञा, अति सर्वत्र वर्जयेत् ॥७८॥

भावार्थ-विशेष परिचय से प्राय अनादर होता है इसलिये सब जगह अतिपन को छोड़ना चाहिये। यानी मर्यादित जो कार्य किया जाता है, वह लाभप्रद होता है।

मौनं सर्वार्थ साधनम् लोभ सर्वार्थ बाधक ।

भावार्थ-मौनव्रत सर्व कार्य के सिद्धि का साधन है और लोभ सब कार्य का बाधक है।

स्थान भ्रष्टा न शोभन्ते, दन्ता केशा नखा नरा ॥८०॥

भावार्थ-दांत, केश, नख और मनुष्य स्थान च्युत होने पर शोभायमान नहीं होते हैं।

तीर्थं फलति कालेन, सद्य साधु समागम ॥८१॥

भावार्थ-तीर्थ समय पर फल देता है और साधु महात्मा का समागम शीघ्र ही फलदायक होता है, अत साधु-जन का समागम कर। कहा भी है कि—

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुन आध।
संगत कीजे साधु की, कटे कोटि अपराध॥

सता हि सङ्ग सकल प्रसूते ॥८२॥

भावार्थ-सज्जन पुरुषों का समागम सब कुछ उत्पन्न कर सकता है। यानी जीवनोन्नति भी हो सकती है।

यो यस्य चित्ते, नहि तस्य दूरे ॥८३॥

भावार्थ-जो जिसके मन में है, वह उसको दूर नहीं है।

प्राप्ते तु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत ॥८४॥

भावार्थ-सोलह वर्ष का पुत्र होने पर उसके साथ मित्र के समान व्यवहार रखना चाहिये।

एकश्चन्द्रतमो हन्ति, न च तारागणोऽपि च ॥८५॥

भावार्थ-एक ही चन्द्रमा अंधेरा मिटा सकता है। न कि तारों का समुदाय मिटाता है।

प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रापदां भाजनम् ॥८६॥

भावार्थ-भाग्यहीन जहा जाता है, वहा प्राय आपत्ति का पात्र ही बनता है।

कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥८७॥

भावार्थ-कर्मानुसार जीव अकेला ही जाता है।

अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम् ॥८८॥

भावार्थ-किया हुआ शुभ या अशुभ कर्म जीवात्मा को जरूर भोगना पड़ता है।

गुणाः सर्वे विवेकतः ॥८९॥

भावार्थ-विवेक से ही तमाम गुण आते हैं।

कीर्ति यस्य स जीवति ॥९०॥

भावार्थ-जिसकी कीर्ति है वह मरने पर भी जिन्दा ही है।

न गृह गृहमित्याहु, गृहिणी गृहमुच्यते ॥९१॥

भावार्थ-घर को घर नहीं माना जाता है, लेकिन गृहलक्ष्मी रूप स्त्री को ही घर कहते हैं।

अकृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति ॥६२॥

भावार्थ-तृणरहित भूमि में पड़ी हुई अग्नि अपने आप ही बुझ जाती है।

मूलं हि संसारतरोः कषायाः ॥६३॥

भावार्थ-संसार वृक्ष की जड़ ही (क्रोध मान-माया-लोभ) कषाय है।

कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव ॥६४॥

भावार्थ-कषायों से छूटना यही मोक्ष है।

कषाय मुक्तः परम स योगी ॥६५॥

भावार्थ-कषायों से छूट वह उत्तमोत्तम योगी है।

शरीरं व्याधि मन्दिरम् ॥६६॥

भावार्थ-रोग का घर शरीर ही है।

बलमूलं हि जीवितम् ॥६७॥

भावार्थ-पराक्रम का मूल जीवन है।

क्षीणे पुण्ये वृथा बलम् ॥६८॥

भावार्थ-पुण्य क्षय होने पर शक्ति निरर्थक है, यानी पुण्यहीन मनुष्य जो युद्ध करता है वह फलितार्थ नहीं होता है।

अजीर्णे भोजनं विषम् ॥६९॥

भावार्थ-खाना पचे बिना भोजन करना जहर जैसा है।

अर्थी दोषान्न पश्यति ॥१००॥

भावार्थ-अपने स्वार्थ को साधनेवाला दोषों को नहीं देखता है।

मूल नास्ति कुत: शाखा ॥१०१॥

भावार्थ-जड़ बिना शाखा कहा से हो सकती है।

अपुत्रस्य गृह शून्यम् ॥१०२॥

भावार्थ-पुत्र के बिना घर सुनसान लगता है।

अमोघ देवदर्शनम् ॥१०३॥

भावार्थ-देव का दर्शन कभी निष्फल नहीं जा सकता है।

बुद्धिर्विपद्धारिणी ॥१०४॥

भावार्थ-बुद्धि आपत्ति को दूर हटाने वाली है। किसी ने ठीक कहा है—

'वलधी बुद्धि आस्री, जो उपजे तत्काल।
वानर वाघ विहारिया मस्लड़े शियाल॥

नग्न क्षपणक ग्रामे, रजक किं करिष्यति ॥१०५॥

भावार्थ-नंगे जनों के गांव में धोबी क्या करेगा? यानी न वस्त्र है न धोना है, रहेगा तो भूखे मरेगा।

आजीवित तीर्थमिवोत्तमानाम् ॥१०६॥

भावार्थ-उत्तम पुरुष का संपूर्ण जीवन तीर्थ समान माना गया है।

अल्पतोयश्चलति कुम्भ ॥१०७॥

भावार्थ-थोड़े पानी से भरा हुआ घड़ा छलकता है कहावत है कि—"अधुरो घड़ो गधार छलकाय" इस ही तरह से अपूर्ण गुण वाला ही मदोन्मत्त बनता है यानी अक्कड़ाई में फिरता है।

आहारे व्यवहारे च, स्पष्टवक्ता सुखी भवेत् ॥१०८॥

भावार्थ—भोजन करने में और व्यवहार में साफ साफ बोलने वाला सुखी होता है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पश्यति ॥१०९॥

भावार्थ-अपनी आत्मा की तरह प्राणी मात्र को जो देखता है, वह पुरुष ही दृष्टिवाला है। मतलब कि इस भावना से रहित मनुष्य देखने पर भी अन्धे के समान महात्मा पुरुष मानते हैं।

विवेकहीनः पशुभिः समान ॥११०॥

भावार्थ-विवेक रहित मनुष्य पशुओं के समान है।

उद्योगः पुरुषलक्षणम् ॥१११॥

भावार्थ-उद्यम यानी कुछ न कुछ कार्य करते रहना मनुष्य का लक्षण है, यानी निकम्मे नहीं बैठना चाहिये।

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना ॥११२॥

भावार्थ-दिमाग दिमाग में बुद्धि जुदी जुदी हुआ करती है।

साधवो नहि सर्वत्र, चंदनं न वने वने ॥११३॥

भावार्थ-जैसे प्रत्येक वन में चन्दन का वृक्ष नहीं होता, वैसे सज्जन पुरुष भी सब जगह नहीं मिलते हैं।

यथा राजा तथा प्रजा ॥११४॥

भावार्थ-जैसा व्यवहार राजा का होता है, वैसा प्रजा का भी होता है। यानी राजा धर्मिष्ठ हो तो प्रजा भी धर्मिष्ठ हो सकती है और राजा धर्म विमुख हो तो प्रजा भी धर्म विमुख होती है।

यथा बीजं तथाङ्कुरः ॥११५॥

भावार्थ-जैसा बीज होता है वैसा अंकुर निकलता है।

प्रणामांत सतां कोपः ॥११६॥

भावार्थ-अपराधी न झुके वहां तक ही उत्तमजनों का गुस्सा रहता है।

राजा मित्रं केन, दृष्टं श्रुतं वा ॥११७॥

भावार्थ-राजा मित्र होता है, ऐसा किसने देखा है, या सुना है, अर्थात् किसी का मित्र नहीं होता।

विनये शिष्य परीक्षा ॥११८॥

भावार्थ-शिष्य की परीक्षा विनय में ही निहित है यानी विनय से होती है।

विद्या विनयेन शोभते ॥११९॥

भावार्थ-विनय से विद्या सुशोभित बनती है।

उत्तमा आत्मना ख्याता ॥१२०॥

भावार्थ-उत्तम पुरुष अपने निर्मल जीवन से स्वयं प्रसिद्ध होते हैं। यानी परोपकार आदि सत्कार्यों से, न तु दूसरों के बल पर प्रतिष्ठा चाहते हैं।

न संतोषात् परं सुखम् ॥१२१॥

भावार्थ-दुनिया में संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

गतानुगतिको लोकः न लोकः पारमार्थिकः ॥१२२॥

भावार्थ-एक के पीछे एक चलने वाले लोक हैं, लेकिन परमार्थ साधने वाले लोक नहीं हैं।

याचको याचकं दृष्ट्वा, श्वानवत् घुर्घुरायते ॥१२३॥

भावार्थ-भिक्षुक को देखकर भिक्षुक कुत्ते की तरह घुर्राता है।

कन्याराशी स्थितो नित्यं, जामाता दशमो ग्रहः ॥१२४॥

भावार्थ-कन्या राशि पर हमेशा रहा हुआ जमाई दशमा ग्रह माना जाता है। अर्थात् ग्रहों की तरह दुःख देने वाला महाग्रह है।

दुस्त्यजं दम्भसेवनम् ॥१२५॥

भावार्थ-धूर्तपन छोड़ना कठिन है, कारण कि स्वार्थ त्याग बिना यह छूट नहीं सकता।

षट्कर्णो भिद्यते मंत्रः ॥१२६॥

भावार्थ-छः कानों का मंत्र (गुप्त बात) भेदा जाता

फैल जाता है। अतः चारों ओर ख्याल रखकर कोई भी बात करनी चाहिये।

यत्र चात्मसुखं नास्ति, न तत्र दिवसं वसेत् ॥१२७॥

भावार्थ-जहां आत्मा को शान्ति नहीं है, वहां एक दिन भी ठहरना न चाहिये।

विद्यारूपं कुरूपाना, क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥१२८॥

भावार्थ-कुरूप मनुष्यों का रूप विद्या है और तपस्वियों का रूप क्षमा रखना है। क्योंकि तपस्या का अजीर्ण क्रोध बताया गया है, कारण कि कोई महापुरुष ही इससे बच सकता है, क्षमायुक्त तप की महिमा अवर्णनीय होती है।

निस्पृहस्य तृणं जगत् ॥१२९॥

भावार्थ-इच्छा रहित मनुष्य की निगाह में सारा जगत तृण के समान है।

बहुरत्ना वसुन्धरा ॥१३०॥

भावार्थ-पृथ्वी नाना रत्नवती कहलाती है, कारण कि इस पृथ्वी पर तीर्थङ्करादि अनेक महापुरुष रत्न समान उत्पन्न हुए हैं होते हैं और होंगे, इस ही लिये पृथ्वी बहु रत्ना मानी गयी है।

समिलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ॥१३१॥

भावार्थ-आंख मींच जाने पर कुछ भी नहीं है।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि ॥१३२॥

भावार्थ-अच्छे कार्यों में बहुत विघ्न आते हैं।

पिष्टस्य पेषणं नास्ति, घृष्टस्य घर्षणं नहि ॥१३३॥

भावार्थ-पिसा हुआ पिसा नहीं जाता है और घिसा हुआ घिसा नहीं जाता है, यानी कार्य करते पहिले खूब विचार करना, कार्य करके विचार करने वाला मूर्ख शिरोमणि कहा जाता है।

शुष्क काष्ठञ्च मूर्खाश्च भज्यन्ते न नमन्ति च ॥१३४॥

भावार्थ-सूखा हुआ काष्ठ और मूर्ख टूट जाता है किन्तु झुकता नहीं यानी मूर्ख दुःखी होने पर भी अपनी बात छोड़ता नहीं है।

विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥१३५॥

भावार्थ-जहर से भी अमृत ग्रहण कर लेना चाहिये, यानी दुर्गुण में से भी गुण ग्रहण करना।

सर्वत्र वायसाः कृष्णाः सर्वत्र हरिता शुका ॥१३६॥

भावार्थ-सब स्थान पर कौवे काले होते हैं और तोते हरे रंग के होते हैं, अर्थात् दुर्जन दुर्जन ही रहते हैं और सज्जन सज्जन ही रहते हैं।

सरलता हृदयस्य विभूषणम् ॥१३७॥

भावार्थ-माया रहित जीवन ही हृदय का भूषण है।

विनाश्रय न शोभन्ते, पण्डिता वनिता लता ॥१३८॥

भावार्थ-सहारा बिना का पण्डित, महिला और लता शोभाय मान नहीं होते हैं यानी उनका निर्वाह नहीं होता।

जिह्वाग्रे मित्र बान्धवा ॥१३९॥

भावार्थ-जबान के अग्रभाग पर मित्र और बन्धु बसता है, यानी एक क्षण भी भूला नहीं जाता है।

लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये ॥१४०॥

भावार्थ-लक्ष्मीदेवी व्यापार में निवास करती है। वस्तुत पुण्यवानों के लिये वह बात सत्य हो सकती है न तु भाग्यहीनों के लिये।

प्रत्यक्षे गुरव स्तुत्या ॥१४१॥

भावार्थ-गुरुजनों का गुणग्राम उनके सम्मुख ही करना चाहिये।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डित. ॥१४२॥

भावार्थ-सपूर्ण विनाश होने के अवसर पर पण्डितजन आधे को छोड़ देता है।

परेङ्गित ज्ञानफला हि बुद्धय: ॥१४३॥

भावार्थ-दूसरे के इङ्गित (चेष्टित) आकार को जानना ही बुद्धि का फल है।

छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति ॥१४४॥

भावार्थ-छिद्रा में अनर्थ बहुत होते है, यानी समान देश आदि में फूट होने पर नुक्सान काफी होता है।

जयति जगति नाद पंचमश्चोपवेद ॥१४५॥

भावार्थ-वाणी रूप पाचवा उपवेद जगत में जय पाता है।

शुचि भूमिगत तोय शुचिर्नारी प्रतिव्रता ॥१४६॥

भावार्थ-भूमि का पानी (बहता पानी) और पतिव्रता स्त्री हमेशा पवित्र है।

आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत् ॥१४७॥

भावार्थ-जो अपने को अच्छा नहीं लगता, वह दूसरो के लिये भी न करें।

दृष्टिपूत न्यसेत् पादम् ॥१४८॥

भावार्थ-नयनो से देखकर पैर रखना। कहा भी है—

"नीचे देख्या तीन गुण, जीव जन्तु टल जाय।
ठोकर भी लागे नहीं, पडी वस्तु मिल जाय॥

पापी पापेन पच्यते ॥१४९॥

भावार्थ-पापी आत्मा पाप (दुष्ट कार्यो) से ही दुःखी होता है।

नव नव प्रीतिकर नराणाम् ॥१५०॥

भावार्थ-नूतन २ वस्तुएँ मनुष्यो को आनन्द देने वाली होती हैं।

नहि सर्वत्र पाण्डित्यं, सुलभं पुरुषे क्वचित् ॥१५१॥

भावार्थ-सब स्थानों पर विद्वता नहीं होती है, वा कोई भाग्यशाली पुरुष में सुलभता से मिल सकती है।

बहुभिर्न विरोद्धव्यम् ॥१५२॥

भावार्थ-बहुत जन के साथ विरोध (झगडा) नहीं करना चाहिए, इससे विशेष हानि होती है।

आत्मा तु पात्रता नेयः पात्रमायान्ति सम्पदः ॥१५३॥

भावार्थ-आत्मा पात्रता को पाता है और पात्र को सम्पत्तियां स्वयमेव मिलती हैं, स्वार्थ त्याग कर परमार्थ को साधे, वह 'पात्र' कहा जाता है।

बालादपि हितं ग्राह्यम् ॥१५४॥

भावार्थ-हितकारी बात बच्चे से भी ग्रहण करनी चाहिये।

अधः कूपस्य खनकः, ऊर्ध्वं प्रासाद कारकः ॥१५५॥

भावार्थ-नीचे कुए का खोदने वाला और ऊंचे महल बनाने वाला मूर्ख होता है। यानी एक तर्फ पापा चरण करके नरकादि नीच गति का गढा तैयार करना और दूसरी ओर बाहरी सुख की नानाविध अभिलाषाएं करके एक बडा महल चुनना यह बात न्याय संगत कैसे हो सकती है।

देशमाख्याति भाषणम् ॥१५६॥

भावार्थ-बोली ही देश की पहिचान कराती है।

विद्या मित्र प्रवासेषु, भार्या मित्र गृहेषु च ॥१५७॥

भावार्थ-विदेश में विद्या मित्र है और घर के अन्दर स्त्री को मित्र मानी गई है।

याचना गत गौरवा ॥१५८॥

भावार्थ-याचना गौरव का नाश करती है, यह गृहस्थ की अपेक्षा से कहा गया है।

भिन्ने चित्ते कुत. प्रीति ॥१५९॥

भावार्थ-मन की जुदाई होने पर प्रेम कैसे रह सकता है।

व्यसनानन्तर सौख्य, स्वल्पमप्यधिक भवेत् ॥१६०॥

भावार्थ-दुःख के पीछे तुरन्त आया हुआ थोड़ा भी सुख अत्यन्त सुख का अनुभव कराता है।

आजन्म उन्मज्जति दुग्धसिन्धौ, तथापि काकः किल कृष्ण एव ॥१६१॥

भावार्थ-यदि कौवा दूध के सागर में जीवन पर्यंत डूबा रहे तथापि काला ही रहता है, यानी दुर्जन को कितना ही उपदेश दिया जाय तो भी अपनी दुर्जनता रूप कालिमा को छोड़ता नहीं है।

कुरूपतया शीलतया विराजते, कुभोजन चोष्णतया विराजते ॥१६२॥

भावार्थ-सदाचार से कुत्सित रूप भी शोभता है और उष्ण-गर्म होने से कुत्सित भोजन भी अच्छा लगता है।

अविवेकः परमापदां पदम् ॥१६३॥

भावार्थ-अत्यन्त आपत्तियों का स्थान 'अविवेक' ही है, यानी विवेक बिना का जीवन दुःखदायी बनता है।

गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥१६४॥

भावार्थ-गुणों में आसक्त संपत्तियां अपने आप ही गुणवान को मिल जाती हैं।

नास्ति क्रोधसमो वह्निः ॥१६५॥

भावार्थ-क्रोध के समान दूसरी कोई अग्नि नहीं है, क्योंकि यह प्रबलाग्नि आत्मगुणों को जलाकर भस्म कर देती है।

मौनेन कलहो नास्ति, न भयं चास्ति जाग्रतः ॥१६६॥

भावार्थ-मौन से झगड़ा नहीं होता है और जागते हुए को भय नहीं होता।

धनं प्राणहरं त्यजेत् ॥१६७॥

भावार्थ-प्राण को नाश करने वाले पैसे को छोड़ो।

चिन्ता जरा मनुष्याणाम् ॥१६८॥

भावार्थ-फिक्र मनुष्यों का बुढ़ापा है।

कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ॥१६९॥

भावार्थ-कमजोर हालत में कौन किसका मित्र हो सकता है। अर्थात् कोई किसी का नहीं होता।

अव्यवस्थित चित्तस्य प्रमादोऽपि भयङ्कर ॥१७०॥

भावार्थ-अस्थिर चित्त वाले की कृपा भी त्रास जनक होती है।

ऋण कृत्वा घृत पिबेत् ॥१७१॥

भावार्थ-कर्जा करके भी घी पीना चाहिये-यह भावना नास्तिक मत की है यानी भविष्य में आते हुए दुःखों का ख्याल नहीं रखना।

मधु प्रीतिकरी वाद ॥१७२॥

भावार्थ-मीठा वचन ही जल्दी से प्रेम कराता है।

पण्डितै सह मित्रत्व, कुर्वाणो नावसीदति ॥१७३॥

भावार्थ-विद्वान पुरुषों के साथ मित्रता करता हुआ कभी दुःखी नहीं होता है, यानी सज्जन का त्रास भी हित कारक होता है, किसी ने ठीक ही कहा है—

"दुर्जन की कृपा बुरी, भली सज्जन को त्रास।
सूरज गरमी देत है, तब वर्षन की आस॥"

अपगुणस्य हत रूपम् ॥१७४॥

भावार्थ-निर्गुण आदमी का सुन्दर रूप भी निकम्मा है, यानी इस रूप की कुछ कीमत नहीं होती।

ऋणकर्ता पिता शत्रु, पुत्र शत्रुरपण्डित ॥१७५॥

भावार्थ-यदि पिता कर्जा करता है तो वह शत्रु समान है और मूर्ख पुत्र भी शत्रु समान माना गया है।

तस्य तदेव ही मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥१७६॥

भावार्थ-जिसका मन जिसमें लगा हुआ है, उसे वही प्रिय (मीठा) लगता है।

नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव ॥१७७॥

भावार्थ-दुर्जन कहता है परंतु करता नहीं है और सज्जन करता है लेकिन कहता नहीं, यानी करके बताना चाहिए न कि कहकर फैलाव करना। कहा भी है—

'कहनी मिश्री खाड है, करणी खाता लोह।
कहनी सम करणी करे, ऐसा विरला कोइ॥

बीजेनैव भवेद् बीज, प्रदीपेन प्रदीपकः ॥१७८॥

भावार्थ-बीज से ही बीज होता है, और दीपक से दीपक होता है। यानी कारण बिना कार्य नहीं हो सकता है अतः आत्मार्थियों को अवश्य ही प्रशस्त कारणों की आसेवना करनी चाहिए, जिससे इच्छित कार्य हो सके।

यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ॥१७९॥

भावार्थ-जिसकी जैसी भावना, वैसी उसकी सिद्धि होती है।

महिला चरियं न जाणति।
महिला चरित्र ब्रह्मापि न जानाति ॥१८०॥

भावार्थ-स्त्रियों का चरित्र ब्रह्मा भी नहीं जानता है, यह

वाक्य कुटिला स्त्रियों के लिये है, सदाचारिणी, सच्चा स्त्रियों के लिये नहीं समझना।

शान्तिः सन्नामिना सुधा ॥१८१॥

भावार्थ-महात्मा पुरुषों की शान्ति अमृत है, यानी शान्तमूर्ति महात्मा पुरुष को देखकर भयङ्कर प्राणी भी अपनी क्रूरता को छोड देते है।

भाग्य सर्वत्र फलति ॥१८२॥

भावार्थ-सब स्थान पर भाग्य ही फलता है।

यद्भाव्य तद्भविष्यति ॥१८३॥

भावार्थ-जो होनहार होता है वही होगा।

तृतीय लोचन ज्ञान, द्वितीयो हि दिवाकरः ॥१८४॥

भावार्थ-तीसरा नेत्र ज्ञान है और दूसरा नेत्र सूर्य माना है। यानी पहला अपना नेत्र होने पर भी पदार्थ को प्रकाशित करनार्थ सूर्य आदि की जरूरत रहती है, अतः दूसरा नेत्र सूर्य है परन्तु जब तीसरा ज्ञान स्वरूप नेत्र प्राप्त हो जाता है तब पहिले दोनों नेत्रों की आवश्यकता नहीं रहती।

लोहो सव्व विणासणो-लोभः सर्व विनाशकः ॥१८५॥

भावार्थ-लोभ सर्व विनाशक होता है, अर्थात् तमाम गुणों का नाश करता है।

सहवासी हि विजानाति, सहवासी विचेष्टितम् ॥१८६॥

भावार्थ-सहचारी का आचरण सहवासी ही जान सकता है, कहा भी है कि-सहवास का गुण पुनारी जाने, यानी परिचय से मालूम पड़ता है।

अपठा मूर्खका: केचित्, केचित् पठित मूर्खका: ॥१८७॥

भावार्थ-कितनेक अपठित मूर्ख होते हैं और कितनेक पठित मूर्ख होते हैं, यानी पढ़ने पर भी जिसने अनुभव ज्ञान या व्यवहार कुशलता प्राप्त नहीं की है वह मूर्ख ही है।

अपठा: पण्डिता: केचित्, केचित् पठित पण्डिता ॥१८८॥

भावार्थ-कितनेक अपठित पण्डित और कितनेक पठित पण्डित होते हैं, अपठित हो परन्तु अनुभवी हो तो वह पण्डित है।

धर्मदंभस्तु दुस्तरः ॥१८९॥

भावार्थ-धर्म कार्य में भी धूर्तपन छोड़ना कठिन है, यानी धर्म के बहाना से सब तरह से ठगता है।

मानरा विपरीता राक्षसा: ॥१९०॥

भावार्थ-मानरा शब्द को उल्टा वाचने से राक्षसा बन जाता है, यानी हितोपदेश को उल्टा मानने वाला है।

अपरीक्षित न कर्तव्यम् ॥१९१॥

भावार्थ-परीक्षा किये बिना कार्य नहीं करना चाहिये, यानी हिताहित की जाच करके कार्य करना चाहिये।

स्त्रीणा च हृदये वार्ता, न तिष्ठन्ति कदाचन ॥१६२॥

भावार्थ-स्त्रियों के पेट में कभी भी बात नहीं ठहर सकती है इस लिए पूरा ध्यान रखना चाहिए।

शत विहाय भोक्तव्यम् ॥१६३॥

भावार्थ-सैकड़ों कार्य छोड़कर भोजन कर लेना चाहिये ।

हस्तस्य भूषण दानम् ॥१६४॥

भावार्थ-हाथ का आभूषण दान देना है।

पीत नीरस्य कि नाम, मन्दिरादिक पृच्छया ॥१६५॥

भावार्थ-पानी पीने के बाद नाम और घर आदि पूछने से क्या लाभ।

वीर भोग्या वसुन्धरा ॥१६६॥

भावार्थ-पृथ्वी पर शासन वीर पुरुष ही कर सकते हैं।

जित हि केन ? मनो हि येन ॥१६७॥

भावार्थ-किसने जीता ? जिसने मन जीता। यानी जिसने मन जीता है उसने ही सब जीता है, मन की चंचलता हटने पर ही आत्म साम्राज्य मिल सकता है।

यवागु जरणे जाड्य, मोदकाना तु का कथा ॥१६८॥

भावार्थ-राब पचाने में जिसकी जठराग्नि कमजोर है, उसे मोदक (लड्डू) पचाने की बात ही क्या करना ? अर्थात्

सामान्य बात जिसके पेट में नहीं टिकती उस विशेष बात कैसे पचा सकता है।

अप्रियस्य च पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभ. ॥१९९॥

भावार्थ-अप्रिय सत्य का कहने वाला और सुनने वाला मुश्किल से मिलता है।

कालस्य कुटिला गतिः ॥२००॥

भावार्थ-काल की गति टेढी मेढी है।

अहिंसा परमो धर्म ॥२०१॥

भावार्थ-अहिंसा धर्म श्रेष्ठ माना है यानी प्राणीमात्र को तकलीफ नहीं देना।

ब्राह्मणो भोजनप्रिय. ॥२०२॥

भावार्थ-ब्राह्मण भोजन करने म ही प्रेम रखता है।

अजापुत्र बलि दद्यात्, देवो दुर्बल घातक' ॥२०३॥

भावार्थ-देव बलहीनों को ही मारने वाला होता है, अत बिचारे बकरा का बलिदान दिया जाता है कहा भी है—

'निर्बल की सब कोई नड, सबल को नहीं नडाय ॥
बाघतणी मागे नहीं, भोग भवानी माय ॥ १ ॥"

न धर्मात् परमं मित्रम् ॥२०४॥

भावार्थ-धर्म से बढकर कोई उत्तम मित्र नहीं है।

विवेक परिभ्रष्टानां, भवति विनिपातः शतमुखः ॥२०५॥

भावार्थ-विवेक से सौ मुख वाले का भी पतन हो जाता है, अर्थात् बोलने में कितना ही होशियार हो, मगर विवेक रहित सफल नहीं होता।

शील हि सर्वस्य, नरस्य भूषणम् ॥२०६॥

भावार्थ-सर्व मनुष्य का आभूषण ब्रह्मचर्य या सदाचार है।

दीप स्नेह विना, निशा शशि विना, धर्म विना मानवा ॥२०७॥

भावार्थ-जैसे तेल बिना दीपक, चन्द्रमा बिना रात्रि नहीं शोभती है, वैसे ही धर्म बिना मनुष्य नहीं शोभता है।

वार्ता पृच्छाम्यहं मित्र ! कुशलं शरीरे तव ।

कुतः कुशलमस्माकं, गलत्यायुर्दिने दिने ॥२०८॥

भावार्थ-हे मित्र ! मैं आपको पूछता हूँ कि आपके शरीर में कुशलता है। तब उत्तर मिला कि हमारे कुशलता कहां से हो कि आयुष्य तो प्रतिक्षण क्षय हो रहा है। यानी अभीतक आत्मा ने सत्पथ दर्शक महापुरुष का शरण नहीं लिया यह बडी अकुशलता की बात है।

विषया विश्व वञ्चका. ॥२०९॥

भावार्थ-जगत को ठगनेवाला विषय ही है यानी लोग विषय वासना में अपना जीवन बरबाद कर डालते हैं।

भावना भवनाशिनी ॥२१०॥

भावार्थ-शुभ विचार ही भव भ्रमण को मिटाता है।

यादृशं क्रियते कर्म, तादृशं प्राप्यते फलम् ॥२११॥

भावार्थ-जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल मिलता है।

मद्यः शक्तिहरा नारी, मद्यः शुक्रकरं पयः ॥२१२॥

भावार्थ-जल्दी से शक्ति हरण करने वाली ललना है और शीघ्र वीर्य (शक्ति) को बढानेवाला दूध माना गया है, यानी ब्रह्मचर्य व्रत को त्रिकरण शुद्धि से पालन करने वाले का अलौकिक-शक्ति पैदा हो जाती है।

न च धर्मो दयापरः ॥२१३॥

भावार्थ-दया के समान कोई धर्म नहीं है।

वाचा विचलिता येन, सुकृतं तेन हारितम् ॥२१४॥

भावार्थ-जो अपने वचन से चलायमान हो गया उसने अपने पुण्य को खो दिया है।

गर्जन्ति गगने मेघा, मयूरा नृत्यन्ति भूतले ॥२१५॥

भावार्थ-आकाश म बादल गर्जना करते हैं और पृथ्वीपर मोर नाचते हैं, यह कितनी विचित्र घटना है।

सुज्ञेषु किं बहुना ॥२१६॥

भावार्थ-बुद्धिशालियों को बहुत कहने से क्या? कहा है—

'अक्लमद को इशारा काफी'

मन ही है। यहां पर मुख्य मनुष्य गति इसलिये ली गई है कि कर्मबंध चारों गति में होता है, परन्तु कर्मों से सर्वथा छूटना यानी मोक्ष का मिलना मनुष्य गति से ही होता है।

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ॥२२५॥

भावार्थ-दान देने से हाथ शोभता है, न तु कंकण पहनने से।

कल्लोलवत् चपला लक्ष्मीः ॥२२६॥

भावार्थ-पानी के कल्लोल की तरह लक्ष्मी चचल है।

सत्यपूतं वदेद्वाक्यम् ॥२२७॥

भावार्थ-सच्चाई से पवित्र वचन बोलना चाहिए।

वस्त्रपूत जल पिबेत् ॥२२८॥

भावार्थ-कपड़ा से छानकर पानी पीना चाहिए।

मणुआण धम्म सामग्गी-मनुष्याणा धर्म सामग्रीः ॥२२९॥

भावार्थ-धर्म आराधन करने का संपूर्ण साधन मनुष्यों को ही मिलता है।

भाग्याधिकं नैव नृपो ददाति ॥२३०॥

भावार्थ-अपने भाग्य से विशेष राजा भी नहीं देता है, यानी भाग्यानुसार ही मिलता है तो फिर सुखद संतोष को अपनाइये, जिससे जीवन आदर्श बने।

पदे पदे निधानानि ॥२३१॥

भावार्थ-कदम कदम पर पुण्यशालियों को निधान होता है।

निर्द्रव्यः क्वापि नार्च्यते ॥२३२॥

भावार्थ-निर्धन कहीं भी पूजनीय नहीं होता यह वाक्य स्वार्थ वृत्ति वालों के लिये है न तु परमार्थ साधन वाले महापुरुष के लिये, महापुरुष की दृष्टि प्राणी मात्र पर समसी रहती है।

यस्यास्ति वित्त स नरः कुलीन ॥२३३॥

भावार्थ-जिसके पास धन है वह पुरुष कुलवान है यानी यह स्वार्थी लोगों की मान्यता है।

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥२३४॥

भावार्थ-तमाम गुण सुवर्ण आश्रय रहते हैं यानी पैसा परमेश्वर है।

अन्यायोपार्जित वित्त, दश वर्षाणि तिष्ठति ॥२३५॥

भावार्थ-अनीति से कमाया हुआ दस बरस पर्यन्त ही ठहरता है।

मोहान्धकार महारे, ज्ञान मार्तण्ड मण्डलम् ॥२३६॥

ज्ञानरूपी सूर्य मण्डल ही मोह तिमिर हरण करने में समर्थ भूत है। इस सूर्य का प्रकाश होने पर बाहिर का सूर्य प्रकाश निरर्थक बन जाता है।

नश्यन्ति पञ्च परमेष्ठिपदैर्भयानि ॥२३७॥

भावार्थ-पच परमेष्ठी प" (नमस्कार मत्र) के जाप (स्मरण) से तमाम भय नष्ट हो जाते हैं।

नमस्कारसमो मत्र न भूतो न भविष्यति ॥२३८॥

भावार्थ-नमस्कार मत्र के समान कोई पवित्र मत्र न था और न होगा। तमाम यत्र तत्र और मत्र का प्रभाव इसमें ही अन्तर्निहित है। यानी इससे ही सारी सिद्धिया प्राप्त होती है।

यत्नानुसारिणी विद्या ॥२३९॥

भावार्थ-उद्यम के अनुसार विद्या मिलती है। इसलिये पुरुषार्थ मानव मात्र को अपनाना चाहिये।

दारिद्र्य नाशन दानम् ॥२४०॥

भावार्थ-दान धर्म दारिद्र्य को दूर करता है।

औदार्येण विना पुसा, सर्वान्या निष्फलाः कलाः ॥२४१॥

भावार्थ-उदारता बिना पुरुषों की तमाम अन्य कलाए निरर्थक ही है।

स्त्रीणा श्रीणा च ये वश्यास्तेऽवश्य पुरुषाधमा ॥२४२॥

भावार्थ-जो पुरुष स्त्रियों के और और लक्ष्मी के वशीभूत हैं, वे जरूर ही अधम पुरुष हैं।

स्त्रिः स्त्रियत्न यद्वश्या म्लेच्छ्य पुरुषोत्तमा ॥२४३॥

भावार्थ-निर्मल वशीभूत स्त्रियां और स्वामी है व पुरुष प्रमत्त ही उत्तम है।

महिलासंगमनात नाशः ब्रह्म-महिलासंसर्गेण ब्रह्मचर्य नश्यति ॥२४४॥

भावार्थ-औरत के समागम से ब्रह्मचर्य नाश होता है।

शिष्यो सामग्रो मूल-विनय शासने मूलम् ॥२४५॥

भावार्थ-आज्ञा पालन में विनय ही मुख्य माना है।

विद्या विनयेन शोभते ॥२४६॥

भावार्थ-विद्या विनय गुण से शोभता है।

अयं निजो परोवेति, गणना लघु चेतसाम् ॥२४७॥

भावार्थ-यह मेरा है यह दूसरे का (पराया) है यह गिनती तुच्छ हृदयवाले मनुष्यों को होती है।

धर्म चतुर्धा मुनयो वदन्ति ॥२४८॥

भावार्थ-त्यागी महात्मा चार प्रकार का धर्म, दान शील, तप और भावना फरमाते हैं।

ब्रह्मचारी सदा शुचि ॥२४९॥

भावार्थ-ब्रह्मचारी निरन्तर पवित्र है।

पुण्य भावानुसारतः ॥२५०॥

भावार्थ-जैसी भावना होती है वैसा पुण्योपार्जन होता है, जीरण सेठ का अपूर्व प्रभावशाली दृष्टान्त प्रसिद्ध है।

भावेषु विद्यते देवो ॥२५१॥

भावार्थ-देव भावनाओं में रहता है।

शतेषु जायते शूर, सहस्रेषु च पण्डितः ॥२५२॥

भावार्थ सैकड़ों में कोई शूरवीर होता है और हजारों में कोई पण्डित होता है।

शक्राद्योऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ॥२५३॥

भावार्थ-इन्द्रादिक को भी जीत लिया है फिर वे अबलाएँ कैसे ? अर्थात् स्त्रीजन इन्द्रादि को भी वशीभूत बना लेती है, फिर वह अबला कैसे ?

धर्मेण हीना' पशुभि. समानाः ॥२५४॥

भावार्थ-धर्म बिना के मनुष्य पशु के समान हैं।

रे दारिद्र्य नमस्तुभ्य, सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादत. ॥२५५॥

भावार्थ-अरे दरिद्रता आपको नमस्कार हो, आपके अनुग्रह से मैं सिद्धि पा सका हूँ, यानी अपरिग्रह से मोक्ष होता है।

कर्तव्यमेव कर्तव्य, प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥२५६॥

भावार्थ-कंठ में प्राण आने पर भी करने योग्य कार्य करना चाहिये।

गतं न शोचामि ॥२५७॥

भावार्थ-गयी वस्तु का विचार मैं नहीं करता हूँ।

मूर्खस्य हृदय शून्यम् ॥२५८॥

भावार्थ-मूर्ख का हृदय सुनसान होता है, यानी हिताहित में कुछ विचार नहीं कर सकता है।

धर्मारंभे ऋणच्छेदे, कालक्षेप न कारयेत् ॥२५६॥

भावार्थ-धार्मिक कार्यों के प्रारंभ करने में और कर्जा चुकाने में समय व्यतीत नहीं करना चाहिये, यानी तत्काल ही कर लेना।

नास्ति जागरतो भयम् ॥२६०॥

भावार्थ-जागते हुए को भय नहीं होता है।

वंद्यते यदवंद्योऽपि, तत्प्रभावो धनस्य च ॥२६१॥

भावार्थ-जो अपूजनीय भी पूजा जाता है तो यह धन का ही महात्म्य जानना चाहिये।

नार्यः समाश्रितनरं हि कलङ्कयन्ति ॥२६२॥

भावार्थ-कुलटा स्त्रियां आश्रय लिये हुवे पुरुष को कलङ्कित करती हैं।

स्वश्लाघा परनिन्दा तु लक्षणं निर्गुणात्मनाम् ॥२६३॥

भावार्थ-दुर्जन पुरुष का लक्षण यह है कि अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा करना।

परश्लाघा स्वनिन्दा तु, लक्षण सद्गुणात्मनाम् ॥२६४॥

भावार्थ-दूसरों का गुणग्राम और अपनी निन्दा करना, यह लक्षण सज्जन पुरुष का होता है।

गुणैरुत्तमता याति, न तु जाति प्रभावतः ॥२६५॥

भावार्थ-गुणों से ही श्रेष्ठता मानी गई है, किन्तु जाति की उत्तमता से नहीं।

समान शील व्यसनेषु सख्यम् ॥२६६॥

भावार्थ-स्वभाव और दुखों में समानता हो वहीं मित्र है।

युक्तिमद् वचन यस्य तस्य कार्य. परिग्रह ॥२६७॥

भावार्थ-जिसका वचन स्याद्वादमय (युक्तियुत) है, उसका ही वचन ग्रहण करने योग्य है।

फल नैव विना तरुम् ॥२६८॥

भावार्थ-वृक्ष के बिना फल नही होता है।

प्रिय वाक्य प्रदानेन, सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ॥२६९॥

भावार्थ-मधुर वाणी बोलने से प्राणी मात्र खुश होते हैं।

त्रिदशाश्चपि वञ्च्यते, दाम्भिकैः कि पुनर्नराः ॥२७०॥

भावार्थ-धूर्तों से देव भी ठगाये जाते हैं तो फिर मनुष्यों का पूछना ही क्या ? वे तो जरूर ही ठगाते हैं।

द्रव्यो हि संग्रहो लोके, काले स्यात् फलदायक ॥२७१॥

भावार्थ-जगत् में एकत्रित किया हुआ पदार्थ समय आने पर फल देने वाला होता है, यानी काम आता है।

स्वकर्म निरता. सन्ते, नान्यशिक्षामपेक्षन्ते ॥२७२॥

भावार्थ-अपने कार्य में मशगूल दूसरों की शिक्षा मानने की अपेक्षा नहीं रखते।

वर प्राण परित्यागो, न मान परिखण्डनम् ॥२७३॥

भावार्थ-प्राण को छोड़ना अच्छा, परन्तु मान (गौरव) का भंग होना अच्छा नहीं है, यानी मान रहित जीवन से जीना इससे तो मरना ही श्रेयस्कर नीतिकार मानते हैं।

एको ध्यानसुभौ पाठ, त्रिभिर्गीत चतु पथम् ॥२७४॥

भावार्थ-अकेले का ध्यान, दो जनों का पढना, तीन का गाना और चार का रास्ता तय करना हितकर होता है।

सगुण निर्गुण नैव, गणयन्ति दयालव ॥२७५॥

भावार्थ-कृपा के सागर महापुरुष यह गुणवान् है और यह गुण रहित है वैसा कभी नहीं विचारते हैं, यानी वे उत्तम पुरुष शत्रु और मित्र पर समदृष्टि रखते हैं।

अज्ञ सुखमाराध्य: ॥२७६॥

भावार्थ-बालजीव सुख से समझाया जा सकता है।

अस्मिन्नसारे संसारे, सारं सारङ्गलोचना ॥२७७॥

भावार्थ-इस संसार में सारभूत नीरागना स्त्रियां हैं, कारण कि जिनकी रत्न कुक्षि में तीर्थङ्करादि महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, उनको रत्नों की खान मानते हैं वह यथार्थ ही है।

झटिति पराशय वेदिनो हि विज्ञा. ॥२७८॥

भावार्थ-पण्डित जन दूसरों का अभिप्राय जल्दी से जानलेते हैं।

कालस्य त्वरिता गतिः ॥२७९॥

भावार्थ-काल की गति शीघ्र ही होती है।

गृहस्थानां यद्भूषणं, तत्साधूनां दूषणम् ॥२८०॥

भावार्थ-गृहस्थों का जो भूषण है वह साधुओं के लिये दूषण माना गया है, कहा है कि साधु पैसा रक्खे तो कीमत कौड़ी की और गृहस्थ के पास पैसा न हो तो कीमत कौड़ी की है।

कोकिलानां स्वरं रूपम् ॥२८१॥

भावार्थ-कोयल का रूप मीठा बोलना है।

प्रस्ताव सदृशं वाक्यं, यो जानाति स पण्डितः ॥२८२॥

भावार्थ-समयानुसार बोलना जो जानता है वही पण्डित माना गया है।

दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं, रात्रौ नैव च नैव च ॥२८३॥

भावार्थ-दिन में भी देखकर बोलना चाहिये और रात्रि में तो

कभी भी बात नहीं करनी चाहिये, कहा है कि भीत के भी कान होते हैं।

परदुःखे दुःखिता विरला. ॥२८४॥

भावार्थ-दूसरों के दुःख में दुःख मानने वाले कोई विरलजन ही होते हैं।

स्त्रीणा द्विगुण आहारो, कामश्चाष्टगुण स्मृतः ॥२८५॥

भावार्थ-स्त्रियों का भोजन दुगुना होता है और विषयवासनाएँ आठगुनी होती हैं यानी उनकी वासनाएँ जल्दी से शान्त नहीं हो सकती है।

मूर्खा निन्दन्ति पण्डितान् ॥२८६॥

भावार्थ-अज्ञानी पुरुष विद्वानों की निन्दा करते है।

चौरा निन्दन्ति चन्द्रमसम् ॥२८७॥

भावार्थ-चोर चन्द्रमा को दुःखदायी मानते हैं।

शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात् ॥२८८॥

भावार्थ-धूर्त के सामने धूर्तपन करना चाहिए, यह सामान्य व्यवहार है।

सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥२८९॥

भावार्थ-यदि सुविधा है तो धन से क्या मतलब ? और यदि अपकीति हो चुकी तो मरण से क्या ! यानी उसको वरदास्त करलेना चाहिए।

अन्यस्थाने कृत पाप, धर्मस्थाने विनश्यति ॥२६०॥

भावार्थ-दूसरी जगह पर किया हुआ पाप धर्म के स्थानपर दूर होता है यानी धर्माराधना से आत्मा पापरहित होता है।

धर्मस्थाने कृत पाप वज्रलेपो भविष्यति ॥२६१॥

भावार्थ-धर्म के स्थानपर किया हुआ पाप वज्र के लेप जैसा हो जाता है, यानी मुश्किल से यह पाप छूट सकता है।

त्रिभि. वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभि पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव लभते फलम् ॥२६२॥

भावार्थ-अत्यंत तीव्र पुण्यपापों का फल इस ही भव में मिलता है यानी तीन वर्षों म, तीन मास में, तीन पक्ष या तीन दिनों में प्राय प्राणीमात्र को मिला करता है।

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ॥२६३॥

भावार्थ-गुणज्ञों में गुण गुणरूप परिणमन करते हैं।

ज्ञानेन देही द्रविणेन गेही ॥२६४॥

भावार्थ-ज्ञान से देहधारी (मनुष्य) और पैसे मे गृहस्थ शोभता है।

अर्थलुब्ध कृतप्रश्नौ सुलभौ तौ गृहे गृहे ॥२६५॥

भावार्थ-धनलोलुपता और अच्छी तरह से खाना तैयार करना घर घर में सरलता से देखने में आता है यानी धन कमाना और रोटी खाना यह क्रिया प्राय मनुष्य मात्र करते हैं उसमें क्या

आश्चर्य। आश्चर्य तो यह है कि धर्ममय जीवन करनार्थ प्रयत्न शील बने।

दाता चोत्तरदाता च, दुर्लभौ पुण्यपुरुषौ ॥२९६॥

भावार्थ-देनेवाला दानवीर और उत्तर देनेवाला, ये दोनों दुर्लभ ही मिलते हैं।

कर्मणो हि प्रधानत्वम् ॥२९७॥

भावार्थ-कर्म की ही प्रधानता मानी गयी है।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः ॥२९८॥

भावार्थ-अधम पुरुष विघ्न के भय से कार्य का आरंभ ही नहीं करते।

वैद्यराज ! नमस्तुभ्यं, यमराज सहोदर ॥२९९॥

भावार्थ-यमराज के भाई वैद्यराज ! आपको नमस्कार हो, प्राय वैद्य का दिल साफ नहीं होता।

विक्रीयन्ते न घण्टाभि-र्गावः क्षीरविवर्जिता ॥३००॥

भावार्थ-दूध बिना की गायें घण्टाओं के शब्द से नहीं बिकती हैं, यानी निरर्थक आडम्बरों से कुछ भी नहीं होता।

जलधि जलमपेयं, पण्डिते निर्धनत्वम् ॥३०१॥

भावार्थ-समुद्र का पानी खारा होने से पीने योग्य नहीं होता है और विद्वान प्राय निर्धन होता है।

मुच्यन्ते नैव कर्मणा ॥२०२॥
भावार्थ-भोगे बिना कर्म जीवात्मा को नहीं छोड़ते हैं।

स्वार्थ भ्रंशो हि मूर्खता ॥२०३॥
भावार्थ-अपने स्वार्थ से भ्रष्ट होना ही मूर्खपन है।

कुपुत्रेण कुलं नष्टम् ॥२०४॥
भावार्थ-दुष्टपुत्र से उत्तम कुल का नाश होता है।

अलसस्य कुतो विद्या ॥२०५॥
भावार्थ-प्रमादी को विद्या प्राप्त कहा से हो सकती है।

ग्रामो नास्ति कुतः सीमा, भार्या नास्ति कुतः सुतः ॥२०६॥
भावार्थ-गांव नहीं है तो उसकी हद कहां से और स्त्री नहीं तो पुत्र कहां से हो सकता है।

दृष्टानपि सतो दोषान्, मन्यन्ते न हि रागिणः ॥२०७॥
भावार्थ-दोषों को देखते हुए भी दृष्टिरागी मनुष्य दोषों को दोषरूप नहीं मानते हैं। यानी गुणरूप में ही देखते हैं, यह विपरीत बुद्धि है।

स्वहस्तेन च यद्दत्तं, लभ्यते तन्नसंशयः ॥२०८॥
भावार्थ-अपने हाथ से जो दिया है, वह मिलता ही है। उसमें शंका को स्थान ही नहीं है।

धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः ॥३०९॥

भावार्थ-यह धर्म धन के प्रेमियों को धन देता है और अभिलाषियों की अभिलाषा पूर्ण करता है, परंपरा से मोक्ष सुख भी देता है।

क्लेवरे मूत्र पुरीष भाजने, लिपन्ति मूढाविरमन्ति पण्डिता॥३१०।

भावार्थ-मूत्र, विष्टा आदि अशुचि पदार्थों से भरे हुवे शरीर में मूर्ख आसक्त रहते हैं और विद्वज्जन उन आसक्तियों से मुक्त होते हैं।

कृपणेन संचिता लक्ष्मीरपरैः परिभुज्यते ॥३११॥

भावार्थ-कंजूस के द्वारा एकत्रित की हुई लक्ष्मी दूसरे ही उपभोग करते हैं।

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति, महतां नोपकरणे ॥३१२॥

भावार्थ-उत्तम पुरुषों की कार्यसिद्धि सात्त्विक पराक्रम में है, परन्तु साधन में नहीं।

अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥३१३॥

भावार्थ-सज्जन पुरुष स्वीकार किये हुवे को प्राणान्त कष्ट आनेपर भी अच्छी तरह से पालते हैं।

रिक्तपाणिर्न पश्येच्च, राजानं देवतां गुरुम् ॥३१४॥

भावार्थ-खाली हाथ से राजा को, देवता को और गुरु को नहीं देखना चाहिये, यानी कुछ भेंट लेकरके ही उनके पास जाना चाहिये।

आस्तन्यपानाज्जननी पशूनाम् ॥३१५॥

भावार्थ-स्तनपान करते हैं वहां तक ही पशुओं का प्रेम माता पर होता है।

शील पर भूषणम् ॥३१६॥

भावार्थ-सदाचार ही उत्तम आभूषण है।

भोगे रोग भयम्, वैराग्यमेवाभयम् ॥३१७॥

भावार्थ-भोग विलास में रोग का भय है, एक वैराग्य ही निर्भय है यानी पौद्गलिक सुख दुःखदायी है, इसलिये इसे ज्ञान जन सुखाभास मानते हैं।

अपूर्व, कोऽपि कामान्धो, दिवा नक्तं न पश्यति ॥३१८॥

भावार्थ-कोई अपूर्व विषयान्ध विषय के लिए दिन और रात भी नहीं देखता है।

दुर्गतौप्रपतत्प्राणिनो, धारयतीति धर्मः ॥३१९॥

भावार्थ-दुर्गति में गिरते हुवे प्राणी की रक्षा करे वह धर्म कहा जाता है।

लोकद्वय विरुद्धं च, परस्त्री गमन त्यजेत् ॥३२०॥

भावार्थ-इसभव में और परभव में विरुद्ध परनारी गमन छोड़ना चाहिये।

निर्द्रव्यो धनचिन्तया, धनपतिस्तद्रक्षणे चाकुल. ॥३२१॥

भावार्थ-निर्धन धन प्राप्त करने के लिए और धनवान उसकी रक्षा करने के लिये दिन रात व्याकुल रहता है। यानी दोनों का जीवन दुःखमय है।

अध्यात्मविद्या विद्यानाम् ॥३२२॥

भावार्थ-विद्याओं की मुख्य विद्या अध्यात्म विद्या ही मानी है। यानी जिसमें आत्मकल्याण निहित हो वह विद्या विद्या है।

तीर्थेषु माता तु मता नितान्तम् ॥३२३॥

भावार्थ-उत्तम पुरुषों के द्वारा तीर्थों में मातारूप भी तीर्थ अवश्य माना गया है क्योंकि माता अनहद उपकारिणी है।

जिह्वाग्रे मधुतिष्ठति, हृदये तु हलाहलम् ॥३२४॥

भावार्थ-जीभ में मिठास और हृदय में हलाहल ज़हर भरा है। यह लक्षण धूर्त का है।

अजातमृतमूर्खाणा, वरमाद्यौ न चान्तिम ॥३२५॥

भावार्थ-पुत्र जन्मा ही नहीं या जन्म लेकर मरगया वे दोनों ही अच्छे। परन्तु मूर्खपुत्र का होना अच्छा नहीं कारण कि प्रतिक्षण दुःखदायी है।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा' क्षारजल का पुरुषा' पिबन्ति ॥३२६॥

भावार्थ-यह पिता का कुआ है, ऐसे बोलते हुवे कायर पुरुष ही खारा पानी पीते हैं।

पत्र नैव यदा करीर विटपे, दोषो वसन्तस्य किम् ॥३२७॥

भावार्थ-जो केर के वृक्ष मे पत्ते नहीं है, उसमे वसन्तऋतु का क्या दोष ?

नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ॥३२८॥

भावार्थ-घुग्घु पक्षी (उल्लू) दिन में नहीं देखता है, उसमे सूर्य का दोष क्या ?

विना गोरस को रसो भोजनानाम् ॥३२९॥

भावार्थ-गोरस (घी-दूध-दही-छाछ) विना भोजन का रस कौनसा ? अर्थात् निरस होता है।

दर्दुरा यत्र वक्तार , तत्र मौन हि शोभनम् ॥३३०॥

भावार्थ-मेंडका की तरह जहां बोलनेवाले हो वहां मौन अच्छा है।

चतुर' सखि मे भर्ता, यल्लिखति तत् परो न वाचयति ॥३३१॥

भावार्थ-हे सखि ' मेरा पति चतुर है क्योंकि वह जो लिखता है, वह दूसरा नहीं वाच सकता है, अर्थात् खराब अक्षर है।

तस्मादप्यधिको मे, स्वयमपि लिखित स्वय न वाचयति॥३३२॥

भावार्थ-उससे भी मेरा पति तो बडा विद्वान है कि अपना लिखा हुआ खुद आपही नहीं पढ सकता है, यानी निरक्षर भट्टाचार्य है।

तावच्च शोभते मूर्खो, यावत् किञ्चिन्न भाषते ॥३३३॥

भावार्थ-जहां तक मूर्ख शोभता है, जहां तक कुछ बोलता नहीं है।

स्वगृह पूज्यते मूर्ख ॥३३४॥

भावार्थ-मूर्ख अपने घर मे पूजा जाता है।

स्थान प्रधान न बल प्रधानम् ॥३३५॥

भावार्थ-स्थान मुख्य है न कि पराक्रम मुख्य है।

स्थानस्थित कापुरुषोऽपि शूर ॥३३६॥

भावार्थ-स्थान पर रहा हुआ कायर पुरुष भी शूरवीर होता है।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्य नेच्छन्ति मानवा ॥३३७॥

भावार्थ-मनुष्य पुण्य का फल चाहते हैं, परतु सुकृत (पुण्य) नहीं चाहते, यानी दानपुण्य नहीं करते हैं।

पयोऽपि शौण्डिनी हस्ते, मदिरा मन्यते जन. ॥३३८॥

भावार्थ-मदिरापान करनेवाले के हाथ मे रहे हुवे दूध को भी दूसरा मनुष्य मदिरा ही जानता है।

क्वचिद् विद्वद् गोष्ठी, क्वचिदपि सुरामत्त कलह ॥३३९॥

भावार्थ-कहा तो पण्डित जनों की आह्लादकारिणी रसीली ज्ञान गोष्ठी और कहा मदिरापान से मदोन्मत्त मनुष्यों का परस्पर झगडा सुना जाता है।

क्वचिद् वीणानाद, क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् ॥३४०॥

• भावार्थ-कहा तो वीणा के मधुरस्वर का सुनना और कहा करुणाजनक रुदन शब्द का श्रवण।

कि तद् द्रव्य कोकिलेनोपनीत, को वा लोके गर्दभस्यापराध ॥३४१॥

भावार्थ-बतलाइये! कोयल ने वह कौनसा द्रव्य प्राप्त किया और जगत म गधा ने कौनसा अपराध किया, जिससे जनता उसपर खुश और उसपर नाखुश होती है।

कि न कुर्वन्ति दुर्जना ॥३३४॥

भावार्थ-दुर्जन क्या नहीं करते हैं, यानी जुल्म दुराचारादि सर्व कर डालते हैं।

शुक ! पजरबन्धस्ते, मधुराणा गिरा फलम् ॥३४३॥

भावार्थ-हे तोता! आपकी मधुरवाणी का फल तो देखिये! पिंजर में बन्ध होना पडा।

पुष्पेषु चपा, नगरीषु लङ्का, नदीषु गङ्गा च नृपेषु रामः॥३४४

भावार्थ-पुष्प मे चपा का फूल, नगरियो में लङ्का नगरी, नदियो मे गगा नदी, और राजा मे रामराजा उत्तम माने गये हैं।

भार स वहते तस्य, ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः ॥३४५॥

भावार्थ-जो सूत्र का अर्थ नहीं जानता है, वह उसका बोझा ही ढोता है, यानी अज्ञानी के पास सूत्र किस कामका ?

व्याधितस्यौषधं पथ्यं, निरोगस्य किमौषधैः ॥३४६॥

भावार्थ-रोगी आदमी को औषध (दवा) हितकारी होती है। परंतु निरोगी को औषधियों से क्या प्रयोजन ?

विषं भवतु मा वा, फणाटोपो भयङ्करः ॥३४७॥

भावार्थ-जहर हो या मत हो, परंतु सर्प के फण का स्थान ही भयङ्कर है, यानी मनुष्य को कंपायमान करता है।

नष्टं चैव मृतं चैव, नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥३४८॥

भावार्थ-पण्डित पुरुष विनाशित वस्तु को और मर हुवे को याद नहीं करते हैं, कारण कि इससे दुःख होता है।

इच्छति शती सहस्रम् ॥३४६॥

भावार्थ-सैंकड़ों द्रव्य का अधिपति हजारों की अभिलाषा करता है कहा भी है कि—

जो दश बीस पचास भये, शत होई हजार तू लाख मगेगी।
कोटी अरब खरब असंख्य, धरापति होने की चाह जगेगी॥
स्वर्ग मृत्यु का राज्य करो, तृष्णा की अति आग लगेगी।
सुन्दर कहे अर शठ मूरख तेरी, भूख कभी नहीं दूर भगेगी ॥१॥

लोभः पापस्य कारणम् ॥३५०॥

भावार्थ-पाप का मुख्य कारण लोभ ही है कि पाप का बाप लोभ यानी पापसे बचना हो तो मर्यादित जीवन ... लोभ ... करने का प्रयत्न करें। नव प्रकार के बाह्य ... ।

राजा कालस्य कारणम् ॥२५१॥

भावार्थ-काल का निमित्त राजा है। कहा है कि जमराज का बुलाया अच्छा परंतु राजा का नाता कभी मत आवे।

क्षमया किं न सिध्यति ॥२५२॥

भावार्थ-क्षमा से क्या सिद्ध नहीं हो सकता है? अर्थात् सब हो सकता है। आत्म कल्याण करनेवाले भव्य प्राणियों को समतागुण प्राप्त करलना चाहिये यानी क्षमामय सुन्दर आदर्श जीवन बनावे।

दुर्बलस्य बल राजा ॥२५३॥

भावार्थ-निर्बल का बल राजा है जो सहायक और रक्षक है।

बल मूर्खस्य मौनित्वम् ॥२५४॥

भावार्थ-मूर्ख की शूरवीरता मौन है।

उपकार परो धर्म, परो मोक्षो वितृष्णता ॥२५५॥

भावार्थ-उत्तम धर्म परोपकार करने में और तृष्णा रहित जीवन मोक्ष माना है।

दुर्मंत्री राज्यविनाशाय, सर्वनाशाय दुर्जन ॥२५६॥

भावार्थ-दुष्ट प्रधान राज्य का विनाश करता है और दुर्जन सब विनाश करनेवाला होता है।

साधूना दर्शन पुण्यम् ॥२५७॥

भावार्थ-महात्मा पुरुषों का दर्शन पुण्य का कारण है।

मद्यपस्य कुतः सत्यं, दया मांसाशिनः कुतः ॥३५८॥

भावार्थ-मदिरापान करने वाले में सत्यवाणी कहा से ? और मांस भक्षण करनेवाले में दया कहां से हो सकती है।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् ॥३५९॥

भावार्थ-रागी मनुष्यों को वन में भी दोष उत्पन्न होते हैं।

निवृत्तरागस्य गृहं तपो वनम् ॥३६०॥

भावार्थ-विरागी महात्मा के लिये घर भी वन समान है।

चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥३६१॥

भावार्थ-पाये हुये चिन्तामणि रत्न को प्रमाद से गुमा देता है। यानी मानव भव को बेकार कर देता है।

कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥३६२॥

भावार्थ-सचमुच कन्या का पिता होना दुःख का स्थान है।

न करोति यमः शान्तिम् ॥३६३॥

भावार्थ-यमराजा क्षमा नहीं करता है।

दोषाश्चापि गुणा भवन्ति, हि नृणा योग्यपदे योजिताः॥३६४॥

भावार्थ-मनुष्य को उचित स्थानपर जोड देने से अवगुण भी गुण रूप में परिणत होता है।

दारिद्र्यं जगदपकारकमिदं, केनापि दग्धं न हि ॥३६५॥

भावार्थ-विश्व का बुरा करनेवाले इस दरिद्रता को किसीने भी जलाया नहीं।

गृह्यन्ते न विभूतिभिश्च ललना दुःशीलचित्ताद्यत. ॥३६६॥

भावार्थ-महापुरुषों के द्वारा दुराचारिणी स्त्रियां ग्रहण नहीं की जाती है।

सत्याद्रज्जूयते फणी ॥३६७॥

भावार्थ-सत्य धर्म के प्रभाव से सर्प रस्सी समान बन जाता है, यानी काटता नहीं है।

ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥३६८॥

भावार्थ-जो फिजूल ही दूसरे के सुख का विनाश करते हैं उनको हम कैसे न जाने, यानी वे छिपे नहीं रहते।

सर्वमेव वृथा तस्य यस्य शुद्धं न मानसम् ॥३६९॥

भावार्थ-जिसका मन शुद्ध नहीं है उसकी सारी क्रियाएं निष्फल हैं।

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनम् ॥३७०॥

भावार्थ-निर्धन को मित्र भी छोड़ देते हैं।

परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे ! मा प्राणेषु दया कुरु ॥३७१॥

भावार्थ-दूसरे का भोजन प्राप्त कर हे दुष्ट बुद्धे ! अपने प्राणों पर दया मत कर। यह गृहस्थों के आश्रित वाक्य है।

त्रयः स्थानं न मुञ्चन्ति, काकाः कापुरुषा मृगाः ॥३७२

भावार्थ-कौवे, कायरपुरुष और हिरण, ये तीनों अपने स्थान को नहीं छोड़ते हैं।

विरोधो नैव कर्तव्यः ॥३७३॥

भावार्थ-जैसनरव भार बड़े वैसा कार्य नहीं करना चाहिये ।

देश त्यागश्च दुर्जनात् ॥३७४॥

भावार्थ-दुर्जन से-दुर्जन के रहने पर देश छोड़ना चाहिये, वर्ना कष्ट में आ जाओगे ।

शास्त्रे नृपे च युवतौ च, कुतः स्थिरत्वम् ॥३७५॥

भावार्थ-आगम मे, राजा के अन्दर और ललना में स्थिरता कहा से ? यानी सावधनता से रहना चाहिये ।

स्त्रीणा गुह्य न वक्तव्य, प्राणैः कंठगतैरपि ॥३७६॥

भावार्थ-प्राणान्त समय आने पर भी स्त्रियों की गुप्त बातें नहीं कहनी चाहिये, इससे भारी अनर्थ हो जाता है ।

चिन्तया नश्यते बुद्धि चिन्तया नश्यते बलम् ॥३७७॥

भावार्थ-चिन्ता से बुद्धि विनाश होती है और चिन्ता से शक्ति भी नष्ट होती है ।

अर्थानामर्जनेदु.खमर्जितानाञ्च रक्षणे ॥३७८॥

भावार्थ-धन कमाने में दुःख और कमाने पर रक्षा करने में भी दुःख है। धिक्कार हो वैसे दुःख" धन को ।

तिष्ठन्ति न चिर जातु, मानिन श्वसुरौकसि ॥३७९॥

भावार्थ-अपना गौरव चाहनेवाला पुरुष सुसराल में बहुत कालपर्यंत नहीं ठहरता है, कहा भी है—

"विदेश जमाई माणक मूलो। देश जमाई मोसन तुलो॥
गाम जमाई भागर मूलो। घर जमाई टाघर तुलो"॥

अर्हत् प्रभवस्यार्धिनंदि ॥३८०॥

भावार्थ-अरिहन्त भगवान का प्रभाव अनहद होता है।

दुर्जेया विषयाः खलु ॥३८१॥

भावार्थ-विषय विकार कठिनता से जीता जा सकता है।

इष्टस्य दर्शनेनापि श स्यात् स्पर्शेन किं पुन' ॥३८२॥

भावार्थ-अपने इष्ट के दर्शन से भी सुख होता है तो फिर स्पर्श से तो सुख का पूछना ही क्या?

प्राणान् रक्षेद् धनैरपि ॥३८३॥

भावार्थ-प्राणों की रक्षा धन से भी करनी चाहिये।

जीवन्नरो भद्राणि पश्यति ॥३८४॥

भावार्थ-जीवित पुरुष कल्याणों को देखता है।

प्रमाण स्वामि शासनम् ॥३८५॥

भावार्थ-मालिक की आज्ञा ही प्रमाणभूत है।

इङ्गितज्ञा हि सेवका. ॥३८६॥

भावार्थ-चेष्टित आकार को जाननेवाले ही सच्चे सेवक हैं।

यादृशस्तादृशो वापि पूजनीय पिता सताम् ॥३८७॥

भावार्थ-सज्जनों के लिये जैसा तैसा भी पिता निरन्तर पूजनीय है।

मन्यन्ते ह्यात्मानं, कृत्वाप्यगामि मायिनः ॥३८८॥

भावार्थ-कुड कपट करनेवाले मायावी पापों को करके भी अपनी आत्मा को आदर देते हैं, यानी बुरे कार्य को भी अच्छा मानते हैं।

प्रायो महात्माना पुत्रा, स्युर्महात्मान एव हि ॥३८९॥

भावार्थ-बहुधा महापुरुषों के पुत्र भी महान ही हुआ करते हैं, यह शिष्ट परपरा है।

उपायन हि प्रथमं प्रणामं स्वामि दर्शने ॥३९०॥

भावार्थ-स्वामी जनों के दर्शन में पहिली भेट नमस्कार की ही की जाती है।

अर्हतामुदय केषा न स्यात् सन्तापहारक ॥३९१॥

भावार्थ-जब अर्हन्त भगवन्त उत्पन्न होते हैं, तब किसका दुःख हरण नहीं होता। यानी सबका ही दुःख मिटता है।

परार्थाय महता हि प्रवृत्तय ॥३९२॥

भावार्थ-महापुरुषों की आचरण परोपकार के लिये ही होते हैं।

अयोऽपि हेमी भवति, स्पर्शात् सिद्ध रसस्य हि ॥३९३॥

भावार्थ-सिद्ध रस के स्पर्श से लोहा भी सुवर्ण बन जाता है। इसी तरह ज्ञानी पुरुषों के सहवास से मूर्ख भी पण्डित बन जाता है

न सामान्य फलं तपः ॥३९४॥

भावार्थ-तपश्चर्या का फल सामान्य नहीं है यानी कठिनतर कर्मों का भी विनाश करता है।

गुर्वाज्ञा हि कुलीनानां विचारमपि नार्हति ॥३९५॥

भावार्थ-गुरुजनों की आज्ञा कुलवानों के लिये विचारणीय भी नहीं होती है, अर्थात् शिरोधार्य ही होती है।

अगृध्नोरनुगाः लक्ष्म्यः ॥३९६॥

भावार्थ-जिसको तृष्णा नहीं है, उसके पीछे सब तरह की लक्ष्मी स्वयमेव जाती है।

न स्थानव्यत्ययो जातु सामान्यस्यापि पर्षदि ॥३९७॥

भावार्थ-पर्षदा में बैठे हुवे सामान्य पुरुष का भी स्थान बदला नहीं जाता है।

स्वाधीनं ह्यात्मसाधनम् ॥३९८॥

भावार्थ-निश्चय ही आत्म साधन स्वाधीन होता है, पराधीन नहीं।

सतां ह्यलङ्घ्या गुर्वाज्ञाः ॥३९९॥

भावार्थ-गुरुदेव की आज्ञा सज्जनों के लिये अपेक्षित है, यानी उपेक्षित नहीं।

गुप्तं पापं, प्रकटं पुण्यम् ॥४००॥

भावार्थ-पाप छुपना चाहता है, पुण्य प्रकट होना चाहता है।